स्मार्त्त यज्ञ सहायक

व्यावसायिक पाठ्यक्रम स्तर 3.0

राष्ट्रीय व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा मान्यता प्राप्त

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन (म.प्र.)

(शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार)

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड

वेदविद्या मार्ग, चिन्तामण, पो. ऑ. जवासिया, उज्जैन - 456006 (म.प्र.)

Phone : (0734) 2502266, 2502254, E-mail : msrvvpujn@gmail.com, website - www.msrvvp.ac.in

स्मार्त्त यज्ञ कनिष्ठ सहायक

प्रधान सम्पादक

प्रो. विरूपाक्ष वि. जड्डीपाल्

सचिव

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड

लेखक

डॉ. मिथिलेश कुमार पाण्डेय
एम०ए०, पीएचडी०(आचार्य अथर्ववेद शौनक)

श्री प्रणव पण्डा
(आचार्य अथर्ववेद पैप्पलाद शाखा)

प्रधान संयोजक

डॉ.अनूप कुमार मिश्र

सहायक निदेशक, प्रकाशन एवं शोध अनुभाग

आवरण एवं सज्जा : श्री शैलेन्द्र

तकनीकी सहयोग एवं टङ्कण : श्री हिमांशु देवड़ा

© महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जयिनी

ISBN :

मूल्य :

संस्करण : 2024

प्रकाशित प्रति : PDF

प्रकाशक : महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठान

(शिक्षामन्त्रालय, भारत सरकार की स्वायत्तशासी संस्था)

वेदविद्या मार्ग, चिन्तामण, पो. ऑ. जवासिया, उज्जैन - 456006 (म.प्र.)

Email: msrvvpujn@gmail.com, Web: msrvvp.ac.in

दूरभाष (0734) 2502255, 2502254

भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की पाठ्यचर्या एवं राष्ट्रीय कौशल भारत मिशन का उद्देश्य शिक्षण विकास एवं प्रशिक्षण के द्वारा शिक्षार्थियों का सर्वांगीण विकास कर रोजगार प्रदान करना है। महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान उज्जैन सदैव शैक्षिक नवाचार के क्षेत्र में अग्रसर रहा है अतः आदर्श वेद विद्यालयों, पाठशालाओं एवं भारत के विद्यालयों में वैदिक कौशल विकास शिक्षण एवं प्रशिक्षण के द्वारा अनेकानेक गतिविधियों के माध्यम से शिक्षार्थियों को रोजगार के अवसर प्रदान कर रहा है, जिससे शिक्षार्थी प्रशिक्षण के ज्ञानार्जन द्वारा स्वयं को अद्यतन एवं जागृत कर सकेंगे तथा इसके विषय ज्ञान का लाभ अपने दैनन्दिन जीवन के साथ-साथ आजीविका प्राप्त कर राष्ट्र निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकेंगे।

स्मार्त्त यज्ञ सहायक पाठ्यपुस्तक में इकाईयों के विषयों को विविध आयामों के साथ सहज एवं प्रभावी तरह से प्रस्तुत किया गया है लेकिन फिर भी **कोई दोष हों तो हमें सूचित अवश्य** करें क्योंकि हमारा परम उद्देश्य वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर वैदिक ज्ञान को कौशल विकास के माध्यम से जन-जन पहुँचाना है। अतः पाठ्य पुस्तकों की गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए विद्वानों के समस्त सुझावों का स्वागत है।

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन

भूमिका

इस संसार में जन्म लेने वाला प्रत्येक प्राणी विभिन्न योनियों को प्राप्त करता हुआ प्रत्येक योनि में विशेष रूप से सुख की लिप्सा कर दुख से मुक्त होना चाहता है। किसी सुख के न मिलने पर प्रयत्नपूर्वक उसको प्राप्त करता है। यत्किञ्चित् सूख प्राप्त होने पर उससे भी अधिक सुख प्राप्त करने के लिए अनवरत प्रयास करता है। मनुष्य में जैसे-जैसे ज्ञान का उत्कर्ष होता है वैसे-वैसे वह अत्यधिक सुख की कामना करता है। इस प्रकार उत्तरोत्तर नाना प्रकार के सुखों का उपभोग करता हुआ वह प्राणी हर्ष का अनुभव करता है। पशु-पक्षी हो या मनुष्य सबकी प्रायः यही स्थिति है। चालाक मनुष्य प्राणी अपनी सुख-सुविधा के लिए सबसे आगे दौड़ लगाकर थक जाने पर भी जब उसको अपने अभिलषित फल की प्राप्ति नहीं होती है तो वह सोचता है कि केवल प्रत्यक्ष साधनों से ही इच्छित फल प्राप्त नहीं होता प्रत्युत और भी कोई अदृष्ट कारण को मात्र भाग्य की संज्ञा देकर उसके भरोसे रहकर अकर्मण्य भी हो जाता है। अहंकारी मनुष्य कभी-कभी अपनी बुद्धि से अदृष्ट, अश्रुत एवं अप्रचलित साधनों से अपने साध्य को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है और उसके न प्राप्त होने पर दुखी भी होता है। कभी वह विपरीत साधन को ही सही साधन मान कर अपनी कल्पनानुसार कर्म करता है इससे भी जब इष्ट फल की प्राप्ति नहीं होती तो फिर और अधिक दुखी होता है। किन्तु विवेकी ज्ञानवान् मनुष्य देव नामक चेतन तत्त्व को अदृष्ट कारण मानकर विवेचन पूर्वक यह निश्चित करता है कि इस चेतन तत्त्व 'देव' की प्रसन्नता से ही अभिलषित फल की प्राप्ति होती है। वह उस देवता की आराधना को ही सही साधन समझ कर उस देव तत्त्व के स्वरूप, स्वभाव एवं गुणादिकों को जानने का प्रयत्न करता है। ध्यान, धारणा एवं तपस्यादि के द्वारा देव तत्त्व के स्वरूप स्वाभावादि का ज्ञान प्राप्त कर उसकी आराधना के लिए प्रवृत्त होता है । आराधना की प्रवृत्तियाँ यद्यपि विविध हैं किन्तु श्रुति एवं स्मृति के द्वारा निर्दिष्ट मार्ग की प्रवृत्ति ही श्रेष्ठ है। अतः इस प्रकार की प्रवत्ति के द्वारा जो देवाराधन किया जाता है वही याग एवं यज्ञ है।

देवाराधन के लिए किए जाने वाले विभिन्न धार्मिक कर्मों में यज्ञ ही श्रेष्ठतम कर्म है – **"यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म"** (शत०ब्रा० १/७/१/५) पूज्य एवं आराध्य होने के कारण वेद में देवता को भी यज्ञ के

नाम से अभिहित किया गया है—''**यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः**'' (मा.सं. ३१/१६) अर्थात एक चेतन तत्त्व किसी दूसरे उत्कृष्ट चेतन तत्त्व के लिए जो यजन करता है वही यज्ञ है।

आहारनिद्रा भयसन्ततित्वं सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम् ।
ज्ञानं हि तेषामधिको विशेषो ज्ञानेन हीना पशुभिःसमाना॥

(हि.मित्रलाभ)

आहार,निद्रा,भय,सन्तानोत्पादन पशु एवं मनुष्यों मे यह एक सामान्य क्रिया है । परन्तु ज्ञान ही एक ऐसा विशेष है जिसमे मनुष्य एवं पशुओं की पृथगता हो जाती है ।

ज्ञान से आप्लावित् होकर मनुष्य जब कार्य करता है, तो उसके अभीष्ट की सिद्धि हो जाती है ।

स्मार्त्तयज्ञ विद्या वेदभूषण पञ्चम (कक्षा-दस) में स्मार्त्त से सम्बन्धित यज्ञ पात्र लक्षण, वैश्वदेव प्रयोग, मूहुर्त , दशदान, यम-नियम धर्म,कुश कण्डिका प्रयोग का शास्त्रानुसार वर्णन किया गया है । उपरोक्त विधियों को मर्यादित् शास्त्रानुसार करने से हि अभीष्ट की सिद्धि एवं अनिष्ट का परिहार सम्भव है ,क्योंकि यह वेद का लक्षण है- इष्टप्राप्ति अनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपादेयं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः ।

वेद ही हमारी संस्कृति के मूल स्तम्भ है । वेद कि महत्ता अर्थ आदि वेदाङ्गों के माध्यम से जाना जा सकता है । इसके अतिरिक्त- **इतिहास पुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत्** ऐसा वचन प्राप्त होता है । वेदार्थों की व्याख्या इतिहास पुराणों के माध्यम से ज्ञात करनी चाहिए।

इस पुस्तक में उपरोक्त विषय का शास्त्र सम्मत प्रमाण के साथ विवेचन किया गया है ,जिसमें वैज्ञानिक तथ्य भी हैं जिससे हमें ज्ञात होता है कि प्रकृति के साथ मिलकर अपना कर्म करना चाहिए । साथ हि शास्त्रानुसार जो भी हो वह भगवदर्पण करना चाहिए ।

जैसे कि श्रीमद्भगवद् गीता में कहा गया है--

यत्करोषियश्नासि यज्जुहोसि ददाति यत्
यत्तपस्यसि कौन्तेय यत्कुरूष्वमदर्पणम् ।

(श्रीमद्भगवद् गीता 9/27)

पं. प्रणव कुमार पण्डा

विषयानुक्रमणिका

विषय		पृष्ठ संख्या
इकाई 1 : कौशल भारत मिशन एवं पुरोहित सहायक की भूमिका का परिचय		**1-9**
1.1.	राष्ट्रीय कौशल भारत मिशन	1
1.2.	राष्ट्रीय कौशल भारत मिशन के उद्देश्य	1
1.3.	कौशल विकास और उद्यमशीलता मन्त्रालय	1
1.4.	मंत्रालय का उद्देश्य	2
1.5.	एनएसडीए की स्थापना	2
1.6.	राष्ट्रीय व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण परिषद(एनसीवीईटी)	3
1.7.	एनसीवीईटी की विशेषताएँ	3
1.8.	राष्ट्रीय व्यावसायिक शिक्षा एवं प्रशिक्षण परिषद (एनसीवीईटी) के उद्देश्य	3-7
1.9.	एनसीवीईटी के मुख्य कार्य	8
1.10.	स्मार्त्त यज्ञ सहायक की भूमिका	8-9
2.यज्ञपात्र लक्षण परिचय		**11-18**
2.1.	प्रणीता लक्षण	10
2.2.	प्रोक्षणीलक्षण	10-11
2.3.	आज्यस्थालीलक्षण	11
2.4.	स्रुव लक्षण	12
2.5.	स्रुग्लक्षण	12
2.6.	पूर्णपात्रलक्षण	13
2.7.	ब्रह्मासन लक्षण	13
2.8.	वज्र(स्फ्य)लक्षण	13

2.9. वर लक्षण 14
2.10. किञ्चित्लक्षण 14
2.11. पुष्कल लक्षण 14
2.12. शूर्पलक्षण 15
2.13. दृषदुपल लक्षण 15
2.14. उलूखल लक्षण 15
2.15. मूसल लक्षण 15
2.16. मेक्षण लक्षण 17
2.17. दर्विलक्षण 17
2.18. आकर्षकफलकलक्षण 18
2.19. कङ्कतलक्षण 18
2.20. अभ्रिलक्षण 18
3.वैश्वदेव प्रयोग **19-29**
3.1. ब्रह्मयज्ञ 19-20
3.2. मनुष्य-यज्ञ 21
3.3. देवयज्ञ 22
3.4. भूतयज्ञ 23
3.5. पितृयज्ञ 23
3.6. गोबलि (पत्ते पर) 24
3.7. काकबलि (पृथ्वी पर) 24
3.8. श्वानबलि (पत्ते पर) 24
3.9. पिपीलिकादिबलि (पत्ते पर) 25
3.10. देवादिबलि (पत्ते पर) 25

4.पञ्चाङ्ग एवं मुहूर्त्त 26-52

5. **दशदान एवं दश दानों का महत्त्व** 53-46

5.1. गोवृषनिष्क्रयदान 53

5.2. भूमिदान 53

5.3. तिलदान 54

5.4. हिरण्यदान 54

5.5. आज्यदान 54

5.6. वस्त्रदान 54

5.7. धान्य दान 55

5.8. गुडदान 55

5.9. रौप्यदान 55

5.10. लवणदान 55

6.इकाईः 6, यम नियम धर्म 56-63

6.1. यम 56-58

6.2. नियम 58-60

6.3. दश धर्म लक्षण 61-63

7. कुशकण्डिका 64-58

7.1. पञ्चभूसंस्कारपूर्वक अग्निस्थापन 71

7.2 कुशकण्डिका प्रयोग 73-75

7.3. कुशकण्डिका मूलपाठः 76-80

इकाईः 1 कौशल भारत मिशन एवं स्मार्त्त कनिष्ठ सहायक की भूमिका का परिचय

1.1. **राष्ट्रीय कौशल भारत मिशन** – 15 जुलाई, 2015 को प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने राष्ट्रीय कौशलभारत मिशन का शुभारंभ किया। कुशल भारत, भारत सरकार की एक पहल है जो कौशल प्रशिक्षण के द्वारा देश के युवाओं का व्यक्तिगत विकास कर उनको सशक्त उद्यमी और अधिक उद्यमशील बनाकर उनका तथा देश के आर्थिक विकास को उन्नत करके कुशल भारत और समृद्ध भारत बनाने के लिए शुरू किया गया है। राष्ट्रीय कौशल मिशन के अध्यक्ष माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी हैं।

भारत की 65% युवा आबादी को कौशल विकास के माध्यम से उद्यमशील बनाकर देश को एक वैश्विक शक्ति बना सकते हैं। अतः कुशल भारत सम्पूर्ण देश के 40 क्षेत्रों में पाठ्यक्रम प्रदान करता है जो राष्ट्रीय कौशल अर्हता मानक के तहत उद्योग और सरकार दोनों द्वारा मान्यता प्राप्त मानकों सहित हैं। यह पाठ्यक्रम एक शिक्षार्थी को कार्य के व्यावहारिक समन्वय के साथ-साथ उसको तकनीकी रूप से उद्यम करने में सक्षम बनाता है।

1.2. **राष्ट्रीय कौशल भारत मिशन के उद्देश्य**

- कौशल विकास का उद्देश्य युवाओं को व्यावसायिक प्रशिक्षण के द्वारा आजीविका प्रदान करना है।
- यह कौशल औपचारिक शिक्षा के साथ कौशल प्रशिक्षण के द्वारा उद्यमिता क्षमता में गुणवत्तापूर्ण परिणाम लाता है।
- कौशल विकास राष्ट्रीय मानकों के तहत प्रौद्योगिकी के माध्यम से कार्य क्षमता को बढ़ाना है।
- युवाओं का व्यक्तिगत विकास के साथ- साथ देश की आर्थिक वृद्धि को शिखर पर ले जाना है।

1.3. **कौशल विकास और उद्यमशीलता मन्त्रालय-**

कौशल विकास के द्वारा युवाओं की आजीविका क्षमता को बढ़ाने हेतु केन्द्र सरकार ने कौशल विकास एवं उद्यमशीलता मंत्रालय (एमएसडीई) का 26 मई 2014 को गठन किया। यह मन्त्रालय कौशल विकास के समस्त प्रयासों का समन्वय करने, कुशल जनशक्ति की मांग और आपूर्ति के बीच के अन्तर

को दूर करने, व्यावसायिक और तकनीकी प्रशिक्षण ढांचे का निर्माण करने, कौशल उन्नयन करने, न केवल मौजूदा रोजगारों हेतु, बल्कि सृजित की जाने वाली नौकरियों के लिए भी नए-नए कौशलों का निर्माण करने के लिए अहर्निशम प्रयासरत है।

1.4. **मंत्रालय का उद्देश्य**- 'कुशल भारत' के दृष्टिकोण के लक्ष्यों को प्राप्त करने और उच्च मानकों के साथ बड़े पैमाने पर कुशल बनाना है। इन पहलों में इसकी सहायता करने के लिए निम्न संस्थाएँ कार्यरत हैं - प्रशिक्षण महानिदेशालय (डीजीटी), राष्ट्रीय व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण परिषद (एनसीवीईटी), राष्ट्रीय कौशल विकास निगम (एनएसडीसी), राष्ट्रीय कौशल विकास निधि (एनएसडीएफ़) और 37 क्षेत्र कौशल परिषदें (एसएससी) के साथ-साथ 33 राष्ट्रीय कौशल प्रशिक्षण संस्थान [एनएसटीआई/एनएसटीआई (महिला)], डीजीटी के अंतर्गत लगभग 15000 औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान (आईटीआई) और एनएसडीसी के साथ 187 प्रशिक्षण भागीदार पंजीकृत हैं। मंत्रालय ने कौशल विकास केंद्रों, विश्वविद्यालयों और इस क्षेत्र के अन्य गठबन्धनों के साथ कार्य कर रहा है। इनके अतिरिक्त, संबंधित केंद्रीय मन्त्रालयों, राज्य सरकारों, अंतर्राष्ट्रीय संगठनों, उद्योग एवं गैर-सरकारी संगठनों के साथ कौशल विकास को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए कार्य कर रहा है तथा देश के कार्यबल को पुन: सुदृढ और सक्रिय कर रहे हैं; तथा युवाओं को घरेलु उद्यमों से लेकर अंतरराष्ट्रीय रोजगार और विकास के हेतु तैयार कर रहें हैं।

1.5 **एनएसडीए की स्थापना**- जून 2013 में सरकार और निजी क्षेत्र के कौशल विकास प्रयासों में समन्वय एवं सामंजस्य स्थापित करने तथा राष्ट्रीय कौशल योग्यता ढांचे (एनएसक्यूएफ) को संचालित करने के लिए की गई थी, जिससे कि यह सुनिश्चित किया जा सके कि गुणवत्ता और मानक क्षेत्र विशेष की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। इसके अतिरिक्त एकल एकीकृत योग्यता-आधारित ढांचे को अधिसूचित किया गया, राष्ट्रीय कौशल योग्यता ढांचे (एनएसक्यूएफ) को 27 दिसंबर 2013 को अधिसूचित किया गया। परन्तु इनमें अनेक हितधारक विभिन्न मानकों के प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रस्तुत कर रहे थे, जिनमें मूल्यांकन और प्रमाणन प्रणालियों की बहुलता थी, जो तुलनीय नहीं थे, तथा इससे व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रणाली पर गंभीर प्रभाव पड़ रहा था, तथा इस प्रकार देश के युवाओं की रोजगार

क्षमता पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा था। व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रणाली और देश के युवाओं की रोजगार क्षमता पर भी प्रतिकूल प्रभाव न पड़े इसलिए राष्ट्रीय व्यावसायिक प्रशिक्षण परिषद (एनसीवीटी) की स्थापना हुई। जो 1956 के एक प्रस्ताव के माध्यम से औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों (आईटीआई) को विनियमित करने के लिए की गई थी, जो दीर्घकालिक प्रशिक्षण प्रदान करते हैं। अल्पकालिक कौशल पारिस्थितिकी तंत्र को राष्ट्रीय कौशल विकास निगम (एनएसडीसी), सेक्टर कौशल परिषदों (एसएससी), कौशल विकास मंत्रालय और अन्य कौशल मंत्रालयों के माध्यम से विनियमित किया गया।

1.6राष्ट्रीय व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण परिषद(एनसीवीईटी) - राष्ट्रीय व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण परिषद की स्थापना भारत सरकार द्वारा 05 दिसंबर, 2018 के माध्यम से पूर्ववर्ती राष्ट्रीय कौशल विकास एजेंसी (एनएसडीए) और राष्ट्रीय व्यावसायिक प्रशिक्षण परिषद (एनसीवीटी) के कार्यों एवं जिम्मेदारियों को समाहित करके एक नियामक निकाय के रूप में की गई है और इसे 1 अगस्त 2020 से प्रारंभ कर मानकों को स्थापित करने, व्यापक नियमों को विकसित करने और व्यावसायिक शिक्षा, प्रशिक्षण और कौशल पारिस्थितिकी संस्थाओं, मूल्यांकन एजेंसियों और कौशल सूचना प्रदाताओं को मान्यता देने और उनके कामकाज की निगरानी करना है।

यह एक व्यापक राष्ट्रीय विनियामक के रूप में कार्य करता है, जिसका कार्य व्यावसायिक शिक्षा, प्रशिक्षण एवं कौशल (वीईटीएस) पारिस्थितिकी तन्त्र के लिए मानक स्थापित करना तथा व्यापक विनियम एवं दिशानिर्देश तैयार करना है, साथ ही सभी स्तरों पर शैक्षणिक शिक्षा में इसके एकीकरण को सुनिश्चित करना है। इसकी भूमिका मजबूत उद्यमिता सहभागिता सुनिश्चित करना तथा गुणवत्ता बढ़ाने और उच्च परिणाम प्राप्त करने के उद्देश्य से बहु-स्तरीय विनियमों को लागू करना है।

राजपत्र अधिसूचना के अनुसार 5 दिसंबर, 2018 राष्ट्रीय व्यावसायिक शिक्षा एवं प्रशिक्षण परिषद के रूप में गठित परिषद का नेतृत्व अध्यक्ष करता है और इसमें अध्यक्ष के अतिरिक्त, दो (2) कार्यकारी सदस्य, तीन (3) गैर-कार्यकारी सदस्य और एक (1) मनोनीत सदस्य होता है। इन सदस्यों का चयन कैबिनेट सचिव की अध्यक्षता वाली खोजसह चयन समिति की सिफारिशों के आधार पर किया जाता है, यही आम सभा में भी शामिल होते है, जिसकी अध्यक्षता कौशल विकास एवं उद्यमिता मंत्रालय

(एमएसडीई) के मंत्री करते हैं और एनसीवीईटी को समग्र मार्गदर्शन प्रदान करने के लिए राज्यों और उद्योग के प्रतिनिधि शामिल होते हैं।

1.7 एनसीवीईटी की विशेषताएँ

- कौशल पारिस्थितिकी तंत्र में लगे निकायों के कामकाज के लिए एक समान मानक बनाने हेतु दिशानिर्देश तैयार करने तथा उनकी निगरानी और पर्यवेक्षण के लिए तंत्र विकसित करने के लिए एक एकल नियामक निकाय की आवश्यकता महसूस की गई, जिससे कौशल में गुणवत्ता सुनिश्चित हो सके।
- खंडित विनियामक प्रणाली को एकीकृत करना और व्यावसायिक शिक्षा, प्रशिक्षण और कौशल मूल्य श्रृंखला में गुणवत्ता आश्वासन को शामिल करना है। इस दृष्टिकोण का उद्देश्य उच्च-स्तरीय कौशल वाले कार्यबल का निर्माण करना, रोजगार क्षमता में सुधार करना और भारतीय अर्थव्यवस्था के तेज़ विकास में योगदान देना और भारत को दुनिया की कौशल राजधानी बनाना है। एनसीवीईटी यह सुनिश्चित करने के लक्ष्य के साथ काम करता है कि भारत में व्यावसायिक शिक्षा, प्रशिक्षण और कौशल (वीईटीएस) उच्च गुणवत्ता वाले हों, उद्योग की ज़रूरतों को पूरा करें और सभी के लिए सुलभ हों।
- सहायक विनियामक ढाँचा स्थापित करने के अलावा, एनसीवीईटी ने अपने अधिकार क्षेत्र में विभिन्न दिशा-निर्देश और नीतियाँ तैयार और अधिसूचित की हैं। इनमें व्यावसायिक शिक्षा, प्रशिक्षण और कौशल (VETS) मूल्य श्रृंखला में आवश्यक प्रक्रियाएँ और हितधारक शामिल हैं, जिनका उद्देश्य गुणवत्ता को बनाए रखना है। इन पहलों का उद्देश्य व्यावसायिक शिक्षा, प्रशिक्षण और कौशल ढाँचों और प्रक्रियाओं के लचीलेपन को बढ़ाना, उद्योग और व्यापक कौशल पारिस्थितिकी तंत्र की उभरती ज़रूरतों को पूरा करने के लिए उनकी प्रभावशीलता और दक्षता को बढ़ाना है, साथ ही राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और राष्ट्रीय ऋण ढाँचे (NCF) के अनुरूप सरकार के व्यापक दृष्टिकोण में योगदान देना है।

1.8 राष्ट्रीय व्यावसायिक शिक्षा एवं प्रशिक्षण परिषद (एनसीवीईटी) के उद्देश्य-

- माननीय प्रधानमंत्री के विजन के साथ संरेखित करना।

- व्यावसायिक शिक्षा एवं प्रशिक्षण में उत्कृष्टता और नवीनता सुनिश्चित करके भविष्य के कार्यबल को सशक्त बनाना है, जिससे कि व्यक्ति अपनी पूर्ण क्षमता प्राप्त कर सकें और वैश्विक अर्थव्यवस्था की गतिशील आवश्यकताओं को पूरा कर सकें।
- व्यावसायिक प्रशिक्षण और शिक्षा के लिए मजबूत मानकों और गुणवत्ता ढांचे की स्थापना और क्रियान्वयन करके भारत में एक सुसंगत, सुसंगत और एकीकृत कौशल विकास पारिस्थितिकी तंत्र बनाना है, ताकि देश में संपूर्ण व्यावसायिक शिक्षा प्रशिक्षण और कौशल (वीईटीएस) प्रणाली और मूल्य श्रृंखला में स्थिरता, जवाबदेही और उत्कृष्टता सुनिश्चित की जा सके और बेहतर परिणाम प्राप्त किए जा सकें और भारत को 'विश्व की कौशल राजधानी' बनाया जा सके।
- सशक्तिकरण, परिवर्तन, उत्कृष्टता और नवाचार पर जोर देता है, कौशल बढ़ाने, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने और उद्योग की आवश्यकताओं को पूरा करने के लक्ष्यों के साथ संरेखित करता है, जो उद्योग की जरूरतों के अनुरूप कार्यबल को प्रशिक्षित करके उद्योग की आवश्यकताओं को पूरा करता है, जिससे कार्यबल की रोजगार क्षमता में सुधार होता है और देश के आर्थिक विकास में योगदान मिलता है। यह वैश्विक नौकरी बाजार के लिए व्यक्तियों को तैयार करने के महत्व पर भी प्रकाश डालता है, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय रोजगार प्रवृत्तियों और जरूरतों को संबोधित करता है।
- व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण के क्षेत्र में मान्यता, विनियमन और निगरानी के लिए गतिशील, गुणवत्ता-केंद्रित प्रणालियाँ स्थापित करना है।
- सम्पूर्ण देश में उच्च गुणवत्ता वाली व्यावसायिक शिक्षा, प्रशिक्षण और कौशल प्रदान करना। यह सुनिश्चित करता है कि बुनियादी ढांचा, प्रशिक्षक, पाठ्यक्रम और सामग्री उद्योग की मांगों को पूरा करती है।
- आजीवन सीखने के अवसर पैदा करना, व्यक्तियों को रोजगार और उद्यमिता के लिए आवश्यक कौशल और योग्यता प्रदान करना।
- प्रशिक्षण, मूल्यांकन और प्रमाणन के लिए मानक और दिशा-निर्देश निर्धारित करने, व्यावसायिक शिक्षा को उद्योग की जरूरतों के साथ जोड़ने और निरंतर और आजीवन सीखने और कौशल विकास को बढ़ावा देने के लिए प्रतिबद्ध है।

- उद्योग और अर्थव्यवस्था की उभरती जरूरतों के लिए प्रासंगिकता बनाए रखना और इसकी रणनीति को रेखांकित करता है।
- भारत को "विश्व की कौशल राजधानी" के रूप में स्थापित करने के लिए, युवाओं को वैश्विक रूप से मानक कौशल से लैस करने पर ध्यान केंद्रित किया जा रहा है। यह पहल पूर्ण जनसांख्यिकीय लाभांश की प्राप्ति और 'आत्मनिर्भर भारत' के क्रियान्वयन का समर्थन करती है।
- वैश्विक प्रतिस्पर्धात्मकता: सभी स्तरों पर वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी कुशल कार्यबल का विकास करना, वर्तमान और भविष्य की कौशल आवश्यकताओं और वैश्विक कार्यबल की आवश्यकताओं को संबोधित करते हुए कौशल भारत पहल के तहत राष्ट्रीय कौशल योग्यता फ्रेमवर्क (एनएसक्यूएफ) के साथ व्यावसायिक और कौशल शिक्षा को संरेखित करना।
- गतिशील संरेखण: उभरते उद्योग की जरूरतों को पूरा करने के लिए एनएसक्यूएफ को समायोजित करना, युवाओं को सशक्त बनाना और कौशल, अपस्किलिंग, री-स्किलिंग और पूर्व शिक्षण की मान्यता (आरपीएल) के माध्यम से कार्यबल उत्पादकता को बढ़ाना।
- आकांक्षी व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण (VET) को एक सम्मानित, आजीवन कैरियर विकल्प के रूप में आगे बढ़ाना, तथा इसे मुख्यधारा की शिक्षा के साथ एकीकृत करना, ताकि व्यावसायिक प्रशिक्षण के साथ जुड़ी सामाजिक पदानुक्रम को समाप्त किया जा सके।
- आकांक्षी व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण (VET) को एक सम्मानित, आजीवन कैरियर विकल्प के रूप में आगे बढ़ाना, तथा इसे मुख्यधारा की शिक्षा के साथ एकीकृत करना, ताकि व्यावसायिक प्रशिक्षण के साथ जुड़ी सामाजिक पदानुक्रम को समाप्त किया जा सके।
- एकीकृत शिक्षा प्रणाली: व्यावसायिक शिक्षा प्रणाली (वीईटीएस) को स्कूल, उच्च, तकनीकी और विश्वविद्यालय शिक्षा के साथ मिलाना।
- क्षैतिज और ऊर्ध्वाधर गतिशीलता, जिससे कई प्रवेश और निकास बिंदु सक्षम होते हैं। विश्लेषण, मूल्यांकन, संश्लेषण, रचनात्मकता, आलोचनात्मक सोच, समस्या समाधान और नवाचार जैसे उन्नत कौशल पर विशेष जोर देंना।
- राष्ट्रीय ऋण ढांचा: व्यावसायिक और सामान्य शिक्षा क्षेत्रों के बीच प्रशिक्षुओं की गतिशीलता में सुधार करने के लिए एक मजबूत राष्ट्रीय ऋण ढांचा विकसित और कार्यान्वित करना।

- परिणाम-केंद्रित कौशल से रोजगार, स्वरोजगार, उद्यमशीलता और विदेश में नौकरी के अवसरों को बढ़ावा देता है।
- कौशल प्रणाली की अखंडता, पारदर्शिता और दक्षता सुनिश्चित करने, स्वायत्तता, सुशासन और सशक्तिकरण के माध्यम से नवाचार और रचनात्मक समाधान को बढ़ावा देने के लिए एक "हल्का लेकिन सख्त" नियामक ढांचा लागू करना।
- उद्योग और कौशल परिवेश की गतिशील आवश्यकताओं के अनुरूप उनकी प्रभावकारिता और अनुकूलनशीलता को बढ़ाने के लिए कौशल रूपरेखा और प्रक्रियाओं में सुधार करना।
- बहु-कौशल और अंतर-क्षेत्रीय कौशल को बढ़ावा देने के लिए उद्योग 4.0 सहित उभरती प्रौद्योगिकियों और भविष्य के कौशल में कौशल की पहचान करना और सुविधा प्रदान करना, कार्यबल की रोजगार क्षमता और कमाई की क्षमता में सुधार के लिए अंतर्राष्ट्रीय नौकरी बाजारों के साथ संरेखित करना।
- पारंपरिक कौशल के द्वारा योग्यताएँ, राष्ट्रीय व्यावसायिक मानक (एनओएस) और माइक्रो-क्रेडेंशियल्स (एमसी) विकसित करना, जो क्षेत्रीय योग्यता ढांचे के साथ-साथ विरासत ज्ञान और पारंपरिक भारतीय कौशल, जैसे हस्तशिल्प और हथकरघा को शामिल करते हैं।
- मिश्रित शिक्षा, कौशल और मूल्यांकन के तरीकों को बढ़ावा देना
- जहां संभव हो, पहुँच का विस्तार करना, लागत कम करना, सीखने के संसाधनों को मानकीकृत करना, और तेजी से और प्रभावी व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण वितरण के लिए उच्च गुणवत्ता वाली ई-सामग्री सुनिश्चित करना एनसीवीईटी भारत में व्यावसायिक शिक्षा, प्रशिक्षण और कौशल पारिस्थितिकी तंत्र के विकास और गुणात्मक सुधार के लिए एक सक्षम नियामक वातावरण बनाना।

1.9. एनसीवीईटी के मुख्य कार्य --

- मूल्यांकन एजेंसियों (एए) और कौशल सम्बन्धित सूचना प्रदाताओं (एसआईपी) को मान्यता देना, अनुशासन सुनिश्चित करना और उनका विनियमन करना।
- राष्ट्रीय कौशल योग्यता ढांचे (एनएसक्यूएफ) को स्थापित करना, एम योग्यता रजिस्टर (एनक्यूआर) को बनाए रखना

- एनएसक्यूएफ संरेखित योग्यता और राष्ट्रीय व्यावसायिक मानकों और माइक्रो क्रेडेंशियल्स (एमसी) का अनुमोदन, जो कि सेक काउंसिल (एसएससी) सहित पुरस्कार देने वाली निकायों द्वारा विकसित करना।
- अनुसंधान एवं सूचना प्रसार और मान्यता प्राप्त संस्थाओं की निगरानी, मूल्यांकन और पर्यवेक्षण।
- एमएसडीई के परामर्श से बीओ मूल्यांकन एजेंसियों के रूप में कौशल विश्वविद्यालयों के लिए विनियम तथा दिशानिर्देश स्थापित करना।
- व्यावसायिक प्रशिक्षण संस्थानों के अप्रत्यक्ष विनियमन के लिए दिशानिर्देश स्थापित करना।
- विभिन्न हितधारकों की समस्याओं का निवारण।

1.9 स्मार्त्त यज्ञ सहायक की भूमिका का परिचय

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का लक्ष्य व्यक्ति का सर्वाङ्गीण विकास करना है। देशों को इस समय कुशल एवं सक्षम जनशक्ति की आवश्यकता है। जिस आवश्यकता को इस इकाई योग्यता आधारित पाठ्यक्रम से पूर्ति की जा सकती है। स्मार्त्त यज्ञ गृह्यसूत्रों से लिया गया है, जन्म से लेकर अन्त्येष्टि पर्यन्त जितने कर्म हैं सभी स्मार्त्त कर्म होते हैं। आहार, निद्रा, भय, संतानोत्पत्ति मनुष्यों और पशुओं में सामान्यतया होते हैं परन्तु ज्ञान ही एक ऐसा विषय है जिसके आधार पर हम सभी कर्मों को शास्त्रोक्त विधि से कर सकते हैं। सभी कर्मों का वैज्ञानिक तात्पर्य भी है इस प्रकार यह छात्रों के कौशल और व्यावसायिक आवश्यकताओं को भी पूरा करेगा तथा कौशल आधारित शिक्षा और प्रशिक्षण के माध्यम से रोजगार क्षमता में सुधार भी करेगा।

सहायक की भूमिका-

यह स्वास्थ्य, सुख, ऋद्धि, सन्तति और दैनिक जीवन की दृष्टि से आधार पाठ्यक्रम है जहाँ छात्रों को समाज में काम करने का अनुभव मिलेगा। यह स्मार्त्त कनिष्ठ सहायक उन्हें शास्त्रीय और समकालीन पहलुओं की विशाल और विस्तृत जानकारी देगा। छात्रों को **सहायक** के मूल कर्तव्यों को समझने में मदद् करने के लिए गृह्यसूत्रों के व्यावहारिक ज्ञान के साथ-साथ मूल सिद्धान्तों का ज्ञान कराया जाएगा।

कनिष्ठ सहायक के उद्देश्य-

- इस पाठ्यक्रम का मूल उद्देश्य अन्य विषयों के साथ-साथ कौशल विषय चुनने वाले छात्रों की रोजगार क्षमता और कौशल दक्षता विकसित करना हैं।
- स्मार्त्त कनिष्ठ सहायक विषय लोगों के मानसिक, भावनात्मक और सामाजिक स्वास्थ्य पर ध्यान केंद्रित करेगा।
- समाज को गुणवत्तापूर्ण सेवा प्रदान करने के लिए कर्मों के वैशिष्ठ्य से प्रशिक्षित करना।
- यज्ञों के सैद्धान्तिक कर्तव्यों को समझना, जिसमें महत्त्वपूर्ण मापदण्डों को लेना और रिकॉर्ड करना, विषय वस्तु की जाँच करना और कर्मों के द्वारा समाज को सुखी- समृद्ध बनाना है।

आजीविका के अवसर -

स्मार्त्त का पाठ्यक्रम छात्रों को लोगों की माँग का विश्लेषण करेगा और समाज में शिक्षार्थियों को अच्छे से **नित्य – नैमित्तिक कर्मों** से परिचय कराएगा। यह पाठ्यक्रम छात्रों को **यज्ञ पात्र परिचय, वैश्वदेव प्रयोग, मुहूर्त्त, दशदान, यम-नियम-धर्म, कुशकण्डिका प्रयोग** के व्यापक विषयों से अवगत कराएगा । यह पाठ्यक्रम छात्रों को उनके कर्मों से संबंधित (शास्त्रानुरुप) प्रभावी ढंग से तैयार किया गया है।

सक्रिय गतिशीलता-

इस पाठ्यक्रम में भाग लेकर छात्र आगे की शिक्षा को अद्यतन कर सकेंगे, विभिन्न संस्थाओं एवं विश्वविद्यालयों के श्रौत - स्मार्त्त विभाग तथा समाज के दैनन्दिन कर्मों के लिए सहायक होंगे।

इकाईः 2 यज्ञपात्र लक्षण परिचय

यज्ञ के प्रमुख रूप से दो विभाग हैं – श्रौत एवं स्मार्त्त। श्रुति वेद का ही दूसरा नाम है । तदनुसार श्रुति – प्रतिपादित यज्ञों को श्रौत एवं गृह्यसूत्रों तथा स्मृतियों में प्रतिपादित यज्ञों को स्मार्त्त यज्ञ कहते हैं -

2.1- प्रणीता लक्षण-

यज्ञादि धार्मिक अनुष्ठानों में यज्ञपात्रों की विशेष रूप से आवश्यकता होती है। यज्ञादि में उपयुक्त होने वाले प्रत्येक यज्ञ पात्र की अलग-अलग लकड़ी और भिन्न-भिन्न रूप का शास्त्रों में निर्देश दिया गया है। अतः यज्ञादि में शास्त्र निर्दिष्ट यज्ञपात्रों का उपयोग करने से ही यज्ञादि धार्मिक अनुष्ठान सफल होते हैं। **प्रणीतावारणा ग्राह्या द्वादशाङ्गुल सम्मिता। खातेन हस्ततलवादाकृत्या पद्मपत्रवत्॥**

चित्र – प्रणीता

वारण (वरने की लकड़ी) काष्ठ का बारह अंगुल का प्रणीता पात्र होता है। वह हथेली के सदृश खुदा हुआ कमल के पत्र की तरह होता है।

2.2 - प्रोक्षणीलक्षण - वारणं पाणिमात्रं च द्वादशाङ्गुल विस्तृतम्। पद्म पत्राकृतिर्वापि प्रोक्षणी पात्रमिरितम् ॥

वारण काष्ठ का हथेली के सदृश बारह अंगुल चौड़ा और कमल के पत्र के आकार का प्रोक्षणी पात्र कहा गया है। इस पात्र के माध्यम से हवन कुण्ड को जलप्रसेचित करते हैं। सामान्य अर्थ में समझें तो इस पात्र में जल लेकर हवन वेदी के बाहर निर्देशित मन्त्रों से चारों दिशाओं में जल डालते हैं जल प्रसेचित करते समय भावना यह रहती है कि अग्नि के चारों ओर शीतलता का घेरा बना रहे, जो हम सबके लिए शान्तिदायी हो।

2.3 - **आज्यस्थालीलक्षण-** देवता के निमित्त हवन अथवा याग करने का आज्य जिस पात्र में रखते हैं, उसे आज्यस्थाली कहते हैं।

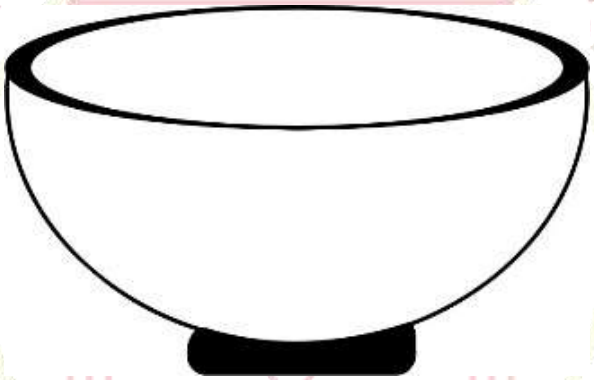

आज्यस्थाली तु कर्तव्या तैजसद्रव्यसम्भवा॥
माहेयी वाऽपि कर्तव्या नित्यं सर्वाग्निकर्मसु।
आज्यस्थाल्याः प्रमाणं तद्यथाकामं तु कारयेत्॥[1]
मृन्मय्यौदुम्बरी[2] **वाऽपि चरुस्थाली प्रशस्यते।**
तिर्यगूर्ध्वं समिन्मात्री दृढा नातिबृहन्मुखी॥
कुलालचक्रघटितमासुरं[3] **मृण्मयं स्मृतम्।**

---

[1] ''महीमयी या कर्तव्या सर्वास्वाज्याहुतीषु च''
इति छन्दोगपरिशिष्ठे पाठः।
'' आज्यस्थाली मृण्मयी वा प्रकर्तव्याग्निकर्मसु'' इति कर्मप्रदीपपाठः।

[2] अत्र. औदुम्बरं ताम्रम् । ''उदुम्बरस्तु देहल्यां वृक्षभेदे चपाण्डके। कुष्टभेदेऽपि च पुमांस्ताम्रे तु स्यान्नपुंसकम्'' (इति मेदिनी) ''औदुम्बरं भवेत्ताम्रे फलादौ यज्ञ शाखिनः' इत्यमरकोश- (२।९।९७) व्याख्यासुधाख्यायाम् ।

[3] ''कुलालचक्रनिष्पन्नं मृण्मयं ह्यासुरं भवेत्'' इति वा पाठः ।

तदेव हस्तघटितं स्थाल्यादि खलु वैदिकम् ॥

2.4- स्रुव लक्षण– स्रवति आज्यं यस्मात्। जिस पात्र से अग्नि पर आज्य की आहुति दी जाती है, उसे स्रुव कहते हैं। यह खैर की लकड़ी का अरत्निमात्र लम्बा बनता है। इसमें आज्य लेने के लिए आगे की ओर अंगुष्ठपर्वमात्र का गर्त होता है।

चित्र :- स्रुवः

खादिरस्य स्रुवः कार्यो हस्तमात्र प्रमाणतः।
अङ्गुष्ठ पर्वखातं स्यात् सर्वकामार्थ सिद्धये॥

का. श्रौ.सू. 1/3/3/4

एक हाथ लम्बा (चौबीस अंगुल का) खैर की लकड़ी का स्रुव बनाना चाहिए। वह अङ्गुष्ठ पर्व के सदृश गहरा (अंगूठे के पौंरुवे के सदृश गहरा) होता है जो समस्त कामना की सिद्धि के लिए कहा गया है।

2.5 स्रुग्लक्षण

पुष्करार्धं भवेत्खातं पिण्डकार्धं स्रुचस्तथा [4]

---

[4] पलाशपर्णाभावे तु पर्णैर्वा पिप्पलोद्भवैः''।।

पलाशपर्णाभ्यामित्यत्र मध्यमपर्णेनेति वेदितव्यम्।

''मध्यमपर्णेन जुहोतीति'' (श.ब्रा. २।६।२।८) श्रुतेः

1. "बाहुमात्र्यः सुचः पाणिमात्रपुष्करास्त्वग्बिला हर्ठ. समुखप्रसेका मूलदण्डा भवन्ति" (का. श्रौ. सू. १।३।३७) बाहुः (अ. को. २।६।८०) प्रमाणमासां ताः बाहुमात्र्यः बाहुप्रमाणाः सुचः (जुहूरुपभृध्रुवाप्रचरण्यग्निहोत्रहवण्याद्याः) भवन्ति तथा पाणिः "पञ्चशाखः शयः पाणिः" (अ. २।६।८१) प्रमाणमस्य तत्पाणिमात्रम्, पाणिमात्रं पुष्करं मुखं यासां ताः पाणिमात्रपुष्कराः सुचः भवन्ति, त्वग्बिलाः त्यक्प्रदेशे बिलं मुखं यासां तास्त्वग्बिलाः, तथा हंसमुखप्रसेकाः प्रसिच्यते क्षार्यतेऽनेनेति प्रसेकः प्रणालिका हंसमुखसदृशः प्रसेकः प्रणालिका यासां ताः हंसमुखप्रसेकाः सा च प्रणालिका एकैव भवति एकयाऽपि शास्त्रार्थस्य कृतत्वात् कार्यसिद्धेश्च न तु द्वे तिस्रो वा कुत्राप्यनुक्तत्वात्, तथा मूलदण्डाः मूले दण्डो यासां ता मूलदण्डा अर्थादग्रे पुष्करं सिध्यति एवंविधा स्रुचो भवन्ति ।

पुष्कर का अर्ध गहरा एवं पिण्ड के अर्धभाग सदृश चमस के आकर वाले पात्र को स्रुच कहते हैं।

2.6- पूर्णपात्रलक्षण

यावताऽन्नेन भोक्तुस्तु तृप्तिः पूर्णैव जायते ।

तं वरार्थमतः कुर्यात्पूर्णपात्रमिति[5] स्थितिः ॥

ब्रह्मणे दक्षिणा देया या यत्र परिकीर्तिता।

कर्मान्तेनुच्यमाना(पि) या पूर्णपात्रादिकाभवेत् ।

एक व्यक्ति के भोजन की तृप्ति जितनी मात्रा में हो उतना अन्न पूर्णपात्र में होना चाहिए उसको ही श्रेष्ठ कहते हैं। ब्रह्मा को पूजनोपरान्त दक्षिणा का जहाँ-जहाँ विधान हो देनी चाहिए। उसके बाद कर्म के अन्त में पूर्णपात्र के साथ भी दक्षिणा देनी चाहिए ।

एक मुष्टि को एक पुष्कल कहते हैं। चार पुष्कल का एक पूर्ण पात्र होता है। जल भरने का पात्र भी पूर्ण पात्र होता है।

2.7 - ब्रह्मासन लक्षण

आसनं ब्रह्मणः कार्यं कारणं वा विकङ्कतम् ॥

ब्रह्मा का आसन दक्षिण दिशा में निश्चित होता है।

2.8- वज्र(स्फ्य)लक्षणम्

खादिरोस्याकृतिर्वज्रोऽरत्निमात्रः[6] प्रशस्यते।

---

[5] "ब्रह्मणे दक्षिणा देया या यत्र परिकीर्तिता ।
कर्मान्तेऽनुच्यमाना (पि) या पूर्णपात्रादिका भवेत् ॥ यावता बहुभोक्तुस्तु तृप्तिः पूर्णेन विद्यते । नावरार्ध्यमतः कुर्यात्पूर्णपात्रमिति स्थितिः" ॥ (का. स्मृ. १५।१-२ गो. स्मृ. २।६६; कर्मप्रदीप. २।५।१-२) इति ।

[6] "खादिरः सुवः, स्फ्यश्च" (का. श्री. १।३।३३-३४) सुवः खादिरः स्यात् । चकारात् स्फ्यो बज्रोऽपि खादिरः स्यात् "खादिरः स्फ्य" इति श्रुतेः (श. ब्रा. ३।६।२।१२) "स्फ्योऽस्याकृतिः" (का. श्रौ. १।३।३९) असिः खड्गः, असेरिवाकृतिर्यस्यासावस्याकृतिः खड्गसदृशः स्फ्यो वज्रो भवति । अरत्नि-मात्रः "अरत्निस्तु निष्कनिष्ठेन मुष्टिना" (अ. को. २।६।८६) "कृतमुष्टिकरो रत्निररत्निकनिष्ठिकः'' अरत्नि प्रमाणमस्यासावरत्निमात्रः । स्फ्योऽरत्निप्रमाणा भवति।

चित्र – स्फ्य

खादिर वृक्ष का वज्र (स्फ्य) होता है इसका आकार अरत्नि मात्र होता है, अरत्नि का तात्पर्य अंगुष्ठा से कनिष्ठिका पर्यन्त माप से होता है।

2.9 – वर लक्षणम्

यवैर्वा [7]ब्रीहिभिः पूर्णं भवेत्तत्पूर्णपात्रकम्।

वरोभिलषितं[8] द्रव्यं सारभूतं तदुच्यते॥

यव, गोधूम अथवा धान्य को पूर्णपात्र में रखना चाहिए। इससे अभिलषित कार्य की सिद्धि होती है।

2.10 – किञ्चित्लक्षण

अष्टमुष्टि भवेत्किञ्चित किञ्चितदष्टौ च पुष्कलम्।

आठ मुष्टि को किञ्चित कहते हैं ।

2.11 - पुष्कल लक्षण

अष्टमुष्टिं भवेत्किञ्चिकिञ्चिदष्टौ च पुष्कलकम् ।

पुष्कलानि च चत्वारि पूर्णपात्रं विधीयते ।

आठ मुष्टि को किञ्चित कहते हैं ।आठ किञ्चित को पुष्कल कहते हैं और चार पुष्कल को पूर्णपात्र कहते हैं ।

---

[7] "यवैर्वा ब्रीहिभिः पूर्ण शूर्प तत्पूर्णपात्रकम्" इति (पं. रामलालकृत) कुशकण्डिकाभाष्ये पाठः । "यवैर्चा ब्रीहिभिः पूर्ण शूर्प तत्पूर्णपात्रकम्" इति (पं. रामलालकृत) कुशकण्डिकाभाष्ये पाठः ।

[8] "वरो वा" (का. श्रौ ६।१०।३८) स्वाधीनं द्रव्यमभिरुचितं च वरशब्दवाच्यमिति भाष्ये कर्काचार्याः । वरोऽभीप्सितं वस्तु, इति वृत्तौ "गौर्बाह्मणस्य वरः ग्रामो राजन्यस्य अश्वो वैश्यस्य" (पा. गृ. १।८।१५-१७) "एते वरा विवाह एव प्रकरणात्" इति गदाधरः । "सर्वासु वरचोदनासु गवादयो वरशब्दवाच्याः" इति भर्तृयज्ञः ।

"यथा शक्तिहिरण्यादिद्रव्यं वाऽथ गवादिकम् । गौर्वरिष्ठतमा विप्रैर्वेदेष्यपि निगद्यते ॥ न ततोऽन्यद्वरं यस्मात्तस्माद्रौर्वर उच्यते । आसां गवामभावे तु दक्षिणा त्वभिधीयते ।। बरस्तत्र भवेद्दानमपि वाच्छादयेद् गुरुम्" ।। इति कुशकण्डिकाभाष्ये ।

2.12 - **शूर्पलक्षण** – यह पात्र बांस से बना होता है। यज्ञ के लिए जंगल से शकट पर लादकर धान या यव लाया जाता है। उसे कूटकर इसी शूर्प से पछोड़कर साफ किया जाता है।

शूर्पं त्वरत्निमात्रं स्यादैषिकं वैणवन्तु वा ।[9]

बांस का अरत्निमात्र शुर्प होता है।

2.13 - **दृषदुपल लक्षण**

लम्बं त्वरत्निमात्रं स्यादुपला च दृषत्तथा ॥

बांस का ही लम्बा अरत्निमात्र का चौकोर दृषदुपल होता है।

2.14 -**उलूखल लक्षण**-हविर्द्रव्य को कूटने में प्रयुक्त होने वाला यह यज्ञपात्र पलाश काष्ठ का बना होता है। यह बारह अंगुल ऊंचा और मध्य में कृश होता है। 'पलाशः स्यादुलूखलः पुरोडाश निर्माण के निमित्त यव या ब्रीहि इसी पात्र में कूटी जाती है।

---

[9] शूर्प चात्र नडवंशेषीकान्यतममयं, श्रौते तन्मयस्तैव दृष्टत्वात् । तथा च श्रुतिः-"अथ शूर्पमादत्ते वर्षवृद्धमसीति वर्षवृद्ध ह्येतद् यदि नडानां यदि वेणूनां यदीषीकाणाम्"

(श. ब्रा. १।१।४।१९) इति ।

"शूर्प च नडतृणमयमिषीकानिर्मितं वेणुदलनिर्मितं वा भवति" इति (का. श्रौ. २।३।८) भाष्ये देवयाज्ञिकाः । तथा च -

"शूर्प शम्यादर्वी शूलशङ्कयोऽधिषवणमसिशाखेध्माधृष्टिपरीशासावभ्रिरधरारणिः (प्रभृति) प्रादेशमात्राणि" इति (का. श्रौ. १।३।३६) भाष्ये देवयाज्ञिकाः ।

"शूर्पं शरेषीकावंशान्यतममये इच्छापरिमाणे" इति (पा. गृ. सू. २।१४।११) भाष्ये हरिहरः । एवमेव "नडवेणुशरेषीकान्यतममये इच्छापरिमाणे इति (पा. गृ. सू. २।१४।११) भाष्ये हरिहरः । एवमेव "नडवेणुशरेषीकान्यतममये शूर्पे" इति गदाधरः ।

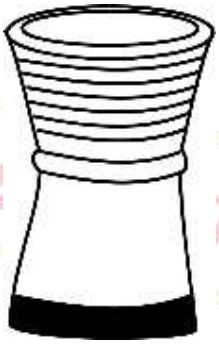

विस्तारो दृषदः प्रोक्तो द्वादशाङ्गुलसङ्ख्या ।

पालाशं जानुमात्रं स्यात्पृथुबुध्नमुलूखलम्॥[10]

2.15 - **मूसल लक्षण** – यह यज्ञपात्र खादिर काष्ठ का बनता है। यह बारह अंगुल लम्बा और गोल आकार का होता है। यव, व्रीहि आदि हविर्द्रव्य का कण्डन इसी से होता है। **"खादिरं मुसलं कार्यम्।, मुसलोलूखलेवार्धे स्वायते सुदृढे तथा"**

अर्ध्दखातं वृहद्ववक्रं मध्ये रास्नासमन्वितम्।

खादिरं मुसलं प्रोक्तमरन्तित्रयसम्मितम्॥ [11]

---

[10] "वैकङ्कतानि पात्राणि" (का. श्रौ. १।३।३१) यज्ञपात्राणि सर्वाणि वैकङ्कतानि विकङ्कतकाष्ठघटितानि भवन्ति "ततो विकङ्कतः समभवत्तस्मादेष यज्ञियो यज्ञपात्रीयो वृक्ष इति श्रवणात् (श. ब्रा. २।२।४।१०) सामान्यसूत्रमेतत् । अस्यापवादसूत्रमाह -"वारणान्यहोमसंयुक्तानि" (का. श्री. १।३।३६) होमेन संयुक्तानि, यैर्होमः क्रियते तानि होमसंयुक्तानि न होमसंयुक्तान्यहोमसंयुक्तानि, यैर्होमो न क्रियते तानि वारणानि भवन्तीत्यर्थः, परिशेषाद्यानि होमसंयुक्तानि होमसाधनानि यैर्होमः क्रियते तानि वैकङ्कतानि, तत्र वारणानि उलूखलमुसलकूर्चेडापात्री पिष्टपात्री-पुरोडाशपात्री शम्या श्रृतावदानाभ्युपवेषान्तर्धानकटप्राशित्रहरणषडवत्तब्रह्मयजमानासनहोतृषदनादीनि, तत्रोलूखलमुसलयोर्विशेषः -

"मुसलोलूखले वार्धे स्वायते सुदृढे तथा ।

इच्छाप्रमाणे भवतः शूर्प वैणवमेव च" ॥ इति ।

[11] "खादिरं मुसलं कार्य पालाशः स्यादुलूखलः ।

यद्वोभौ वारणौ कार्यौ तदभावेऽन्यवृक्षजौ" ॥ (त्रि.मं. २।८९) इति ।

स्मृत्यर्थसारे-

"समित्पवित्रं वेदञ्च मुसलोलूखलं ग्रहान् । नाभ्युखासन्युपरवाञ्छम्यानुक्पुष्कराणि च ॥ शाखास्वरुविषाणानि चरूणां मेक्षणानि च । कुर्यात्प्रादेशमात्राणि महावीरास्त्रयस्तथा" । ॥

2.16 - मेक्षण लक्षण

प्रादेश मात्रं विज्ञेयं मे[12] क्षणं तु विकङ्कतम्।

वृतमङ्गुष्ठपर्वाग्रहमवदान क्रियाक्षमम्॥

बारह कुशों के समूह को तीन-तीन कुशा से समिध बन्धन मेक्षण होता है।

विशेष – **मेक्षणं च होम साधनत्वामैंकङ्कतम् पालाशमपि भवति तथा च कात्यायनः –**

इध्मजातीयमिध्मार्ध प्रमाणं मेक्षणं भवेत् ।

वृत्तं (वार्क्षं) चाङ्गुष्ठ पृथ्वग्रमवदान क्रियाक्षमम्॥

पन्द्रह लकड़ी (समिध) उदुम्बर, पलास आदि हवनीय लकड़ी कनिष्ठिका से अंगुष्ठ पर्यन्त जिसको अरत्नि कहते हैं उसका प्रयोग यथा विधिपूर्वक करना चाहिये।

एषैव दर्वि यस्तत्र विशेषस्तमहं ब्रुवे।

दर्वि द्वयङ्गुल पृथ्वग्रा तुरीयानं च मेक्षणम् ॥

(कर्मप्रदीपे 45/14-15)

उसी प्रमाण से दर्भ की मुष्टि कहते हैं जिसको आज्य पात्र के नीचे रखते हैं वहीं दर्वि दो अंगुल की होती है।

2.17 – **दर्विलक्षण – दृणाति विदारयति येन स दर्विः।** यह विकंकत काष्ठ की बनी कलछुल के आकार की होती है। चातुर्मास्य याग में इसी से हविर्द्रव्य की आहुति दी जाती है।

''दर्व्यादत्ते''का. श्रौ.सू. – 5/6/30, का. स्मृति – 15/15

ईदृश्येव भवेद्दर्वि विशेषस्तमहं ब्रुवे ।

वारण्यरत्निमात्रा स्यात्तुर्यांशाधिकपुष्करा ।

यह विकङ्कत काष्ठ की बनी कलछुल के आकार की होती है। चातुर्मास्य याग में इसी से हर्विद्रव्य की आहुति दी जाती है।

---

[12] मेक्षणं च होमसाधनत्वाद्वैकङ्कतम्, पालाशमपि भवति । तथा च कात्यायनः -

"इध्मजातीयमिध्मार्धप्रमाणं मेक्षणं भवेत् । वृत्तं (वाक्षं) चाङ्गुष्ठपृथ्वग्रमवदानक्रियाक्षमम्" ।॥ "एषैव दर्वी यस्तत्र विशेषस्तमहं ब्रुवे । दर्वी द्व्यङ्गुलपृथ्वग्रा तुरीयोनं च मेक्षणम्" ।॥

(कर्मप्रदीपे-२/५/१४-१५) इति ।

इध्मजातीयं खादिरं पालाशं वा, विभीतकादिवर्जं यत्किञ्चिद्वनस्पतिमयं वा । तथा च गोभिलः

2.18 - **आकर्षकफलकलक्षण –**

हस्ताकारा च पृथ्वग्रा अग्रे सर्पफणाकृतिः।

आकर्षफलकं [13]हस्तामात्रं स्याद्धनुराकृतिः ॥

हाथ के आकार को आगे की तरफ सर्प के फण की तरह आकृति वाली एक हाथ की धनुष के आकार का आकर्षक फलक होता है।

2.19 - **कङ्कतलक्षण**

अग्रे सर्पफलाकारं खादिरं वा विकङ्कतम् ।

कङ्कतानि त्रिदन्तीनि वारणानि भवन्ति हि।

आगे की तरफ सर्प के फण के आकार का तीन दन्त सदृश आकार का खदिर का कङ्कत होता है।

2.20- **अभ्रिलक्षण**

वारण्यरन्तिमात्रा स्यादभ्रिः [14]शासन्दशाङ्गुलम् ।

द्वात्रिंशदङ्गुला शम्या [15]वारणीत्याभिधीयते॥

यह एक अरत्नि लम्बा तीक्ष्ण मुख नुकीले डण्डे के आकार का पात्र है। वेदि के खनन में इसका उपयोग है।

---

[13] ''आकर्षकफलकेन औदुम्बरेण बाहुप्रमाणेन सर्पाकृतिना'' पारस्करगृह्यसूत्र – (२।१०।१७) भाष्ये जयरामहरिहरगदाधराः।

[14] ''अग्निररत्निमात्रस्तीक्ष्णमुखः'' इति देवयाज्ञिकाः।

[15] ''शम्या प्रादेशमात्री'' इति दर्शपूर्णमासप्रकरणे (का.श्रौ. १।३।३६)

इकाई:3,वैश्वदेव प्रयोग

वैश्वदेव प्रयोग

"अह्नोऽष्टधा विभक्तस्य चतुर्थे स्नानमाचरेत् ।

पञ्चमे पञ्च यज्ञा स्युर्भोजनं च तदुत्तरम् ॥

अह्नोऽष्टधाविभक्तस्य विभागः पञ्चमः स्मृतः ।

कुतश्चित्कारणान्मुख्यकालाभावे तदन्यथा ॥ इति ।

स्नान, संध्या, जप, देवपूजा, वैश्वदेव और अतिथिपूजा- ये छः नित्यकर्म माने गये हैं। इनमें स्नान, संध्या, जप तथा देवपूजाके सम्बन्धमें लिखा जा चुका है। अब वैश्वदेव के सम्बन्ध में लिखा जा रहा है। देवपूजा के बाद वैश्वदेव का विधान है।

संध्या न करने से जैसे प्रत्यवाय (पाप) लगता है, वैसे ही बलिवैश्व- देव न करने से भी प्रत्यवाय लगता है। भोजन के लिये जो हविष्यान्न घर में पकाया जाता है, उसी से वैश्वदेव करना चाहिये। अभाव में साग, पत्ता, फल, फूल से भी करें। गेहूँ, चावल (जो उबाला गया न हो), तिल, मूंग, जौ, मटर, कँगुनी, नीवार-ये हविष्यान्न हैं। घी, दूध या दही मिलाकर होम करे। तेल और क्षार-पदार्थ निषिद्ध हैं। कोदो, चना, उड़द, मसूर, कुलथी-ये अन्न भी निषिद्ध हैं। भोजन के लिये पकाया हुआ हविष्यान्न ही बलिवैश्वदेव का मुख्य उपकरण है। किंतु इस कर्म की अबाधित आवश्यकता देखकर शास्त्र ने छूट दे दी है कि यदि पकाया अन्न सुलभ न हो तो कच्चे अन्न से, यदि हविष्यान्न न हो तो अहविष्यान्न से, यदि अन्न सुलभ न हो तो फल-फूल से और यह भी सम्भव न हो तो जल से ही वैश्वदेव करे।

इसी तरह वैश्वदेवमें नमक निषिद्ध है। किंतु पाक में कहीं वह पड़ ही गया हो तो क्या करे ? तब शास्त्र ने उपाय बतलाया है कि कुण्ड के उत्तर की ओर की गर्म राख हटाकर होम करें। जब दूसरे के घर में सपरिवार भोजन करना हो, तब तो चूल्हा जलाने का प्रश्न नहीं उठता, किंतु शास्त्र का आदेश है कि उस दिन भी बलिवैश्वदेव करे। उपवास के दिन भी बलिवैश्वदेव करना चाहिये। पक्वान्न के अभाव में सूखे अन्नसे अथवा फल-फूलसे यह कर्म करे।

जिस अग्नि में भोजन तैयार होता है, उसी अग्नि में होम करे'। घर के बीच में ताँबे के कुण्ड में यह अग्नि रखकर होम करना चाहिये अथवा अठारह अंगुल की चौकोर वेदी बना ले, जिसमें तीन, दो या

एक मेखला हो। यदि ताम्रकुण्ड या वेदी न हो तो कच्ची मिट्टी के पात्र, ताम्रपात्र आदि अथवा पके मिट्टीके पात्रमें भी वैश्वदेव करें। चूल्हा, लौहपात्र और खपरेका निषेध है।

अविभक्त परिवारमें इस कर्मको मुख्य व्यक्ति ही करे। एक के करने से ही परिवार भर का किया हुआ मान लिया जाता है। दूसरे देश में पृथक् पाक करनेपर पिता के रहते पुत्र या ज्येष्ठ भाई के रहते छोटा भाई भी बलिवैश्वदेव करे। स्त्रियाँ भी बिना मन्त्र के वैश्वदेव कर सकती हैं।

बलिवैश्वदेव के सम्पन्न होने के बाद भगवान् को भोग लगाये' । कारण, बलिवैश्वदेव से अन्न का संस्कार हो जाता है। भोग लगाने के लिये अन्न अलग निकालकर रख ले। वैश्वदेव होने के पहले यदि अतिथि आ जाय, तो इस यज्ञ के लिये अलगसे अन्न निकालकर उसे ससम्मान भिक्षा देकर विदा करे। अतिथि को प्रतीक्षा नहीं करानी चाहिये। वह न आये तो अग्नि में ही हवन करना चाहिये। आवश्यक हो तो वैश्वदेवकी अग्नि को बाँसकी फूँकनी से फूंककर प्रज्वलित करे। हाथ से, सूप से और अपवित्र वस्त्र से हाँककर प्रज्वलित करने का निषेध हैं। दाहिने हाथ को उत्तान कर, चारों अँगुलियों को सटाकर, अँगूठे की सहायतासे मौन रहकर, बायें हाथ को हृदय से लगाकर और दाहिना घुटना टेककर हवि दे। घृतमिश्रित चावल से आहुति देनी चाहिये। आहुति का परिमाण बेर या आँवलेके बराबर हो'। यहाँ ' घृत' शब्द से घी, दूध, कुसुम आदि का तेल - ये सभी गृहीत होते हैं। अर्थात् घृत के अभावमें इन वस्तुओंका प्रयोग किया जा सकता है।

3.1- **ब्रह्मयज्ञ** - ब्रह्म यज्ञ एक नित्यकर्म है और यह ''दैनिक वैदिक अनुष्ठानों'' का हिस्सा है। इसके अतिरिक्त हम देवताओं, ऋषियों और पितरों के लिए तर्पण (प्रसन्न करने के लिए जल अर्पित करना) करते हैं। ब्रह्म यज्ञ के सबसे महत्वपूर्ण अनुष्ठानों में से एक है चार वेदों का पाठ और अपने स्वयं के वेद से एक अंश का पाठ करना तथा स्वाध्याय करना।

पूर्व की ओर मुँह कर सव्य होकर पालथी मारकर तीन बार गायत्रीका जप करे।

अथ पूर्वो(र्व) न कृतश्चेदत्र यथाशक्ति पूर्ववद् ब्रह्मयज्ञः। ततोऽग्नेः पश्चिमतः स्वासने प्राङ्मुखोपविश्य देश-कालौ सङ्कीर्त्य ''इषे त्वा'' (य.सं.१।१) इत्यादि ''खं ब्रह्मा'' (य.सं. ४०।१८) इत्यन्तकस्य माध्यन्दिनीयकस्य वाजसनेयकस्य यजुर्वेदाम्नायस्य विवस्वान् ऋषिः गायत्र्यादीनि सर्वाणि छन्दासि सर्वाणि यजूंषि सर्वाणि सामानि प्रतिलिङ्गोक्ता देवता ब्रह्मायज्ञारम्भे विनियोगः।

केचित्तु दशप्रणवसहितेषु इत्येवं प्रयोगः। दशप्रणवद्वेधाप्रकारः।

"आदौ प्रणवमुच्चार्य व्याहृतीः प्रणवान्विताः ।

मन्त्रादौ प्रणवः कार्यो मन्त्रान्ते प्रणवः पुनः ॥

ततो व्याहृतिसंयुक्तस्त्वन्ते च प्रणवः (सदा) पुनः" ॥ इत्येकः पक्षः ।

3.2- **मनुष्य-यज्ञ-** जनेऊको कण्ठीकर उत्तराभिमुख होकर २०वें अंकपर ग्रास दे। बलिवैश्वदेव के बाद सबसे पहले अतिथियों को ससम्मान भोजन कराये। इसके पहले मनुष्य-यज्ञ में जो अन्न दिया गया है, उससे भिन्न अन्न श्रेष्ठ ब्राह्मणों को जो दिया जाता है, वह मनुष्य-यज्ञ कहलाता है। यह भी देखना होता है कि नियमित भोजन करनेवाले जो भृत्य हैं, उनका अवरोध किसी तरह न हो। अभावकी स्थितिमें मीठी बातोंसे अतिथियों को संतुष्ट करे। चटाई बिछाकर ससम्मान बिठाये, जल ही दे दे। इन तीनों से भी अतिथियों का जो सत्कार होता है, वह ज्योतिष्टोमसे भी अधिक फलप्रद होता है।

अतिथियों को लौटाना नहीं चाहिये, ऐसा करनेसे पाप लगता है। मध्याह्न में आये अतिथि की अपेक्षा सूर्यास्त के समय आये अतिथिका आठ गुना अधिक महत्त्व' है। सूर्यास्त के समय आये अतिथि को 'सूर्योढ' कहा जाता है। 'सूर्योढ' अतिथि यदि असमय में भी आ जाय तो उसे बिना भोजन कराये न रहे।

वैश्वदेव के समय प्राप्त अतिथि को नारायणका स्वरूप मानते हुए उसके कुल, शील, आचार, गुण-दोष, विद्या – अविद्या आदि पर विचार नहीं करना चाहिए।

२०-ॐ हन्त ते सनकादिमनुष्येभ्यो नमः, इदं हन्त ते सनकादिमनुष्येभ्यो न मम।

बलिवैश्वदेव-विधि

रसोईघर के बीच कुण्ड के पीछे पूर्व दिशा की ओर मुखकर कुशासन पर बैठकर पवित्री धारणकर आचमन और प्राणायाम करे। इसके बाद हाथमें जल लेकर संकल्प करे -

'अद्य... मम पञ्चसूनाजनितपापक्षयपूर्वकश्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं तन्त्रेण वैश्वदेवकर्म करिष्ये ।'

इसके बाद **'पावकनाम्ने अग्नये नमः'** - इस मन्त्रसे प्रज्वलित अग्निको कुण्डमें प्रतिष्ठित करे। उक्त मन्त्रसे अग्निकी पूजा कर प्रणाम करे। निम्नलिखित मन्त्रसे प्रार्थना करे -

मुखं यः सर्वदेवानां हव्यभुक् कव्यभुक् तथा।

पितृणां च नमस्तस्मै विष्णवे पावकात्मने । ॥

इसके बाद जलसे पर्युक्षण कर दाहिना घुटना टेककर सव्य होकर बायें हाथसे हृदयका स्पर्श करते हुए देवतीर्थसे जलती हुई आगमें घृताक्त अन्नकी पाँच आहुतियाँ दे-

3.3 **देवयज्ञ** –देवों के निमित्त अग्नि में आहुति देना देवयज्ञ है-

१-**ॐ ब्रह्मणे स्वाहा, इदं ब्रह्मणे न मम।**

२-**ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम ।**

३-**ॐ गृह्याभ्यः स्वाहा, इदं गृह्याभ्यो न मम।**

४-**ॐ कश्यपाय स्वाहा, इदं कश्यपाय न मम।**

५-**ॐ अनुमतये स्वाहा, इदमनुमतये न मम।**

इसके बाद जलपात्र के पास (चित्र देखें) हवन से बचे हुए अन्न के तीन ग्रास रखे।

१- **ॐ पर्जन्याय नमः।**

२- **ॐ अद्भ्यो नमः ।**

बलिहरण-मण्डल

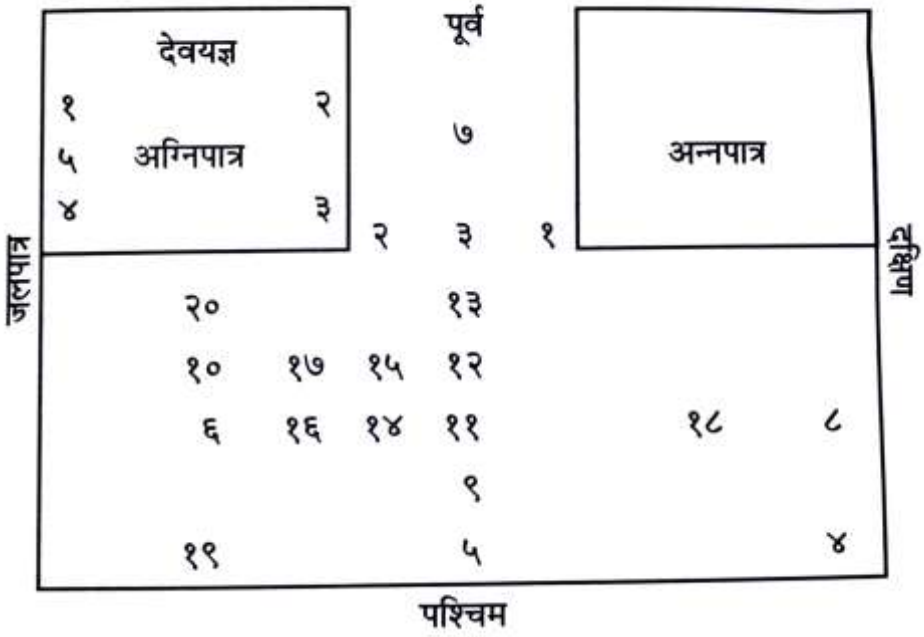

३- **ॐ पृथिव्यै नमः ।**

गोग्रास, श्वान, काक, देवादि, पिपीलिकादि पञ्चबलि

इसके बाद अग्नि के पास पानी से एक बिता चौकोर मण्डल बनाकर रखे ।

इसमें साथ के मानचित्र के अंकों के अनुसार बीस आहुतियाँ देनी हैं। जैसे चित्र में जहाँ एक अंक लिखा है, वहाँ **'धात्रे नमः, इदं धात्रे न मम'** कहकर एक ग्रास रखे, फिर जहाँ २ का अंक लिखा हे, वहाँ गृहद्वार पर, दूसरा ग्रास रखे। इसी तरह ३ से २० तक अंकों की जगह ग्रास देते जायँ –

3.4- **भूतयज्ञ**

१ - **ॐ धात्रे नमः, इदं धात्रे न मम।**

२ – **ॐ विधात्रे नमः, इदं विधात्रे न मम।**

३ – **ॐ वायवे नमः, इदं वायवे न मम।**

४ – **ॐ वायवे नमः, इदं वायवे न मम।**

५ - **ॐ वायवे नमः, इदं वायवे न मम।**

६ - **ॐ वायवे नमः, इदं वायवे न मम।**

७ - **ॐ प्राच्यै नमः, इदं प्राच्यै न मम।**

८ - **ॐ आवाच्यै नमः, इदमवाच्यै न मम ।**

९ – **ॐ प्रतीच्यै नमः, इदं प्रतीच्यै न मम।**

१०- **ॐ उदीच्यै नमः, इदमुदीच्यै न मम।**

११- **ॐ ब्रह्मणे नमः, इदं ब्रह्मणे न मम।**

१२-**ॐ अन्तरिक्षाय नमः, इदमन्तरिक्षाय न मम।**

१३-**ॐ सूर्याय नमः, इदं सूर्याय न मम।**

१४-**ॐ विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः, इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यो न मम ।**

१५-**ॐ विश्वेभ्यो भूतेभ्यो नमः, इदं विश्वेभ्यो भूतेभ्यो न मम ।**

१६-**ॐ उषसे नमः, इदमुषसे न मम।**

१७-**ॐ भूतानां पतये नमः, इदं भूतानां पतये न मम।**

3.5- **पितृयज्ञ** – जल द्वारा पितरों को तर्पण प्रदान करना पितृयज्ञ है ।

दक्षिण की ओर मुखकर जनेऊको दाहिने कंधे पर रखकर बायाँ घुटना टेके।

१८-**ॐ पितृभ्यः स्वधा नमः, इदं पितृभ्यः स्वधा न मम।**

निर्णेजनम् –पूरब की ओर मुखकर सव्य होकर दाहिना घुटना टेके। अन्न के पात्रको धोकर वह जल १९वें अंक की जगह निम्न मन्त्र पढ़कर डाले-

१९ - **ॐ यक्ष्मैतत्ते निर्णेजनं नमः, इदं यक्ष्मणे न मम ।**

ततो बृहत्पराशरोक्तकल्पेन- "त्वमग्ने द्युभिः" (शु. य. सं. ११।२७) इत्येकया "आ ब्रह्मन्नि" त्येकया (शु. य. सं. २२।२२ 4" अहाव्यग्न" (य. सं. २०।७९) इत्येकया –

''स्वरेण वर्णेन च यद्विहीनं तथैव हीनं क्रिययाऽपि यच्च।

तथातिरिक्तं मम तत्क्षमस्व ततस्तवाग्ने परिपूर्णमे (व)तत्'' ॥

एभिर्मन्त्रैरग्नेः प्रसादनम्।

। ''त्र्यायुषम्'' (शु.य.सं. ३।६२) इत्यनेन भस्मना त्रिपुण्ड्रधारणम्।

पञ्चबलि

3.6-गोबलि (पत्ते पर)

मण्डल के बाहर पश्चिम की ओर निम्नलिखित मन्त्र पढ़ते हुए सव्य होकर गोबलि पत्ते पर दे-

ॐ सौरभेय्यः सर्वहिताः पवित्राः पुण्यराशयः ।

प्रतिगृह्णन्तु मे ग्रासं गावस्त्रैलोक्यमातरः ॥

इदं गोभ्यो न मम।

3.7- काकबलि (पृथ्वी पर)

अपसव्य होकर निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर कौओंको भूमि पर अन्न दे-

ॐ ऐन्द्रवारुणवायव्या याम्या वै नैर्ऋतास्तथा ।

वायसाः प्रतिगृह्णन्तु भूमौ पिण्डं मयोज्झितम् ॥

इदमन्नं वायसेभ्यो न मम।

3.8 - श्वानबलि (पत्ते पर)

जनेऊ को कण्ठीकर निम्नलिखित मन्त्र से कुत्तों को बलि दे-

द्वौ श्वानौ श्यामशबलौ वैवस्वतकुलोद्भवौ ।

ताभ्यामन्नं प्रयच्छामि स्यातामेतावहिंसकौ ॥

इदं श्वभ्यां न मम ।

3.9 - पिपीलिकादिबलि (पत्ते पर)

इसी प्रकार निम्नाङ्कित मन्त्र से चींटी आदिको बलि दे-

पिपीलिकाः कीटपतङ्गकाद्या

बुभुक्षिताः कर्मनिबन्धबद्धाः ।

तेषां हि तृप्त्यर्थमिदं मयान्नं

तेभ्यो विसृष्टं सुखिनो भवन्तु ॥

इदमन्नं पिपीलिकादिभ्यो न मम ।

3.10 - देवादिबलि (पत्ते पर)

सव्य होकर निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर देवता आदि के लिये अन्न दे-

ॐ देवा मनुष्याः पशवो वयांसि

सिद्धाः सयक्षोरगदैत्यसङ्घाः ।

प्रेताः पिशाचास्तरवः समस्ता

ये चान्नमिच्छन्ति मया प्रदत्तम् ॥

इदमन्नं देवादिभ्यो न मम।

अग्निका विसर्जन - इसके बाद हाथ धोकर और आचमन कर भस्म लगाये। फिर हाथ जोड़कर अग्निदेवता को प्रणाम करे और निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर इनका विसर्जन करे -

गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ स्वस्थाने परमेश्वर ।

यत्र ब्रह्मादयो देवास्तत्र गच्छ हुताशन ॥

न्यूनतापूर्ति - अब न्यूनता की पूर्ति के लिये भगवान से प्रार्थना करे-

प्रमादात् कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत् ।

स्मरणादेव तद् विष्णोः सम्पूर्ण स्यादिति श्रुतिः ॥

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ।

न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥

अर्पण - अब पवित्री खोलकर रख दे और इस वैश्वदेवकर्म को भगवान् को अर्पित कर दे-'**अनेन वैश्वदेवाख्येन कर्मणा श्रीयज्ञस्वरूपः परमेश्वरः प्रीयताम् । ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु ।'**

ॐ विष्णवे नमः, विष्णवे नमः, विष्णवे नमः।[16]

---

[16] १-संध्या स्नानं जपश्चैव देवतानां च पूजनम् । वैश्वदेवं तथातिथ्यं षट् कर्माणि दिने दिने ॥ (बृ० परा० १। ३९)

२-वैश्वदेवं प्रकुर्वीत स्वशाखाविहितं ततः । ततः - देवार्चनानन्तरमिति माधवाचार्याः । (आचारभूषण, पृ० २४०)

३-प्रत्यवायमाह माधवीये व्यासः - पञ्चयज्ञांस्तु यो मोहान्न करोति तस्य नायं न च परो लोको भवति धर्मतः ॥ गृहाश्रमी। (दे० भा० ११। २२)

४-शाकं वा यदि वा पत्रं मूलं वा यदि वा फलम्। सङ्कल्पयेद् यदाहारं तेनैव जुहुयाद्धविः ॥ (दे० भा० ११। २२। १२)

५-(क) गोधूमा व्रीहयश्चैव तिला मुद्गा यवास्तथा। हविष्या इति विज्ञेया वैश्वदेवादिकर्मणि ॥

(ख) सितमस्विन्नं च हविष्यमिति व्रतार्के ।

(ग) 'कलायकगुनीवाराः ' (आचारेन्दु, २५२) (व्रतार्क)

१-जुहुयात् सर्पिषाभ्यक्तं तैलक्षारविवर्जितम् ।

दध्याक्तं पयसाक्तं वा तदभावेऽम्बुनाऽपि वा ॥

२-कोद्रवं चणकं माषं मसूरं च कुलित्थकम् । (बृ० प० स्मृ० ४। १५९)

क्षारं च लवणं सर्वं वैश्वदेवे विवर्जयेत् ॥ (स्मृत्यन्तर)

३-तत्र च सिद्धस्य हविष्यस्य मुख्यत्वात् तदर्थं पाकः कर्तव्यः । तत्रासामर्थ्य तु अपक्केनापि वैश्वदेवः कर्तव्यः । हविष्याभावे अहविष्येनापि । (वीरमित्रोदय, आ० प्र०)

'न चेदुत्पद्यतेऽन्नं तु अद्भिरेतान् समापयेत्।' (वीरमित्रोदय, आ० प्र०)

'अहरहः पञ्चयज्ञान् निर्वपेत्- आपत्रशाकोदकेभ्यः ।' (शंखलिखित)

४-'न क्षारलवणहोमो विद्यते' (नारायणवृत्ति)

तथा परान्नसंस्पृष्टस्य चाहविष्यस्य होमः । उदीचीनमुष्णं भस्मापोह्य तस्मिन् जुहुयात् । (आपस्तम्ब)

५-परान्नभोजने उपवासदिनेऽपि पञ्चयज्ञार्थं पक्तव्यमेव । सर्वथा पाकासम्भवे पुष्पैः फलैरद्भिर्वा वैश्वदेवं कुर्यात् । (आश्वलायनवृत्ति)

१-यस्मिन्नग्नौ पचेदन्नं तस्मिन् होमो विधीयते ।

२-गृहस्य मध्यदिग्भागे वैश्वदेवं समाचरेत् ।

३-वैश्वदेवं प्रकुर्वीत कुण्डमष्टादशाङ्गुलम् । मेखलात्रयसंयुक्तं द्विमेखलमथापि वा ॥ स्यादेकमेखलं वापि चतुरस्रं समन्ततः । अपि ताम्रमयं प्रोक्तं कुण्डमत्र मनीषिभिः ॥

(अङ्गिरा)

(स्मृतिमञ्जरी)

(स्मृतिसार)

४-कुण्डस्थण्डिलासम्भवेऽपक्वमृण्मयपात्रकुण्डाकृतिरहितताम्रादिपात्रपक्वमृण्मय-पात्राणामप्यनुज्ञा गम्यते ।

(संस्काररत्नमाला)

५-न चुल्ल्यां, नायसे पात्रे न भूमौ न च खर्परे । वैश्वदेवं प्रकुर्वीत

(दे० भा० ११।२२।४)

६-सर्वैरनुमतिं कृत्वा ज्येष्ठेनैव तु यत्कृतम् । द्रव्येण चाविभक्तेन सर्वैरेव कृतं भवेत् ॥

७-(क) यदि स्याद् भिन्नपाकाशी ग्रामे ग्रामान्तरेऽपि च। वैश्वदेवं पृथक् कुर्यात् पितर्यपि च जीवति ॥

(ख) वैश्वदेवः क्षयाहश्च महालयाविधिस्तथा । देशान्तरे पृथक् कार्यौ दर्शश्राद्धं तथैव हि ॥

(शाकल)

(स्मृतिसमुच्चय)

८-'नास्ति स्त्रीणां पृथग् यज्ञः', 'न स्त्री जुहुयात्' इति निषेधौ समन्त्रकवैश्वदेवपरम्।'

(आचारेन्दु, पृ० २५५)

१-वैश्वदेवविधिं कृत्वा विष्णोर्नैवेद्यमर्पयेत् । वैश्वदेवविशुद्धोऽसौ विष्णवेऽन्नं निवेदयेत् ॥

(व्यास)

(मनु०)

२-देवार्थमन्नमुद्धृत्य वैश्वदेवं समाचरेत् । नैवेद्यमर्पयेत् पश्चान्नृयज्ञं तु ततश्चरेत् ॥

(प्रयोगसार)

३-अकृते वैश्वदेवे तु भिक्षौ भिक्षार्थमागते । उद्धृत्य वैश्वदेवार्थं भिक्षां दत्त्वा विसर्जयेत् ॥

(दे० भा० ११।२२। १३)

नाग्निहोत्रेण दानेन नोपवासोपसेवनैः । देवाश्च परितुष्यन्ति यथा त्वतिथिपूजनात् ।।

४-न पाणिना न शूर्पेण न चामेध्यादिनापि वा।

मुखेनोपधमेदग्निं मुखादेष मुखेनेत्यत्र वेणुधमनीयुक्तेनेति व्यसीयत ॥ वाक्यशेषः ।

(शंख)

(दे० भा० ११।२२।५)

(आ० सूत्रावली)

५-उत्तानेन तु हस्तेन अंगुष्ठाग्रेण तु पीडितम् । संहतांगुलिपाणिस्तु वाग्यतो जुहुयाद्धविः ॥

'हृदि सव्यं निधाय वै।'

'अनिपातितजानोस्तु राक्षसैर्हियते हविः ।

(परिशिष्ट)

(स्मृतिमञ्जरी)

(गोभिल)

इकाईः 4, पञ्चाङ्ग एवं मुहूर्त्त

किसी भी कार्य के सम्पादन हेतु मुहूर्त्त की आवश्यकता होती है। बिना मुहूर्त्त किसी कार्य को करने से कार्य की सिद्धि में शङ्का होती है अथवा वह पूर्ण नहीं होता है। अतः मुहूर्त्त के आधार पर कार्य सम्पादन करने से शत प्रतिशत कार्य सिद्ध होते हैं।

पञ्चानामङ्गानां समाहारः पञ्चाङ्गमिति कथ्यते।

तत्र तिथि, वारं च नक्षत्रं योगः करण मेव च

तिथिज्ञान –

प्रतिवच्च द्वितीया च तृतीया तदनन्तरम् ।

चतुर्थी पञ्चमी षष्ठी सप्तमी चाष्टमी तथा ॥१॥

नवमी दशमी चैवैकादशी द्वादशी ततः।

त्रयोदशी ततो ज्ञेया ततः प्रोक्ता चतुर्दशी ॥

पौर्णिमा शुक्लपक्षे तु कृष्णपक्षे त्वमा स्मृता ॥२॥ (वृहद्.)

प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, शुक्लपक्ष, में पूर्णिमा, कृष्णपक्ष में उसी पन्द्रहवीं तिथि को अमावस्या कहते हैं।

तिथीयों की नन्दादि संज्ञा—

नन्दा च भद्रा च जया च रिक्ता, पूर्णेति सर्वास्तिथयः क्रमात्स्युः।

कनिष्ठमध्येष्टफलास्तु शुक्ले कृष्णे भवन्त्युत्तममध्यहीनाः॥१३॥

नन्दा =१।६।११, भद्रा = २।७।१२, जया = ३।८।१३, रिक्ता ४।९।१४, पूर्णा = ५।१०।१५ इस प्रकार शुक्ल प्रतिपदा से तीन पर्याय करने पर क्रम से नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता, पूर्णा १५ तिथियों की संज्ञा हैं । ये शुक्लपक्ष में कनिष्ठ, मध्य तथा इष्ट फल देने वाली हैं और कृष्णपक्ष में उत्तम, मध्यम तथा हीन फल देने वाली हैं॥१३॥

योगों के नाम—

विष्कुम्भः प्रीतिरायुष्मान् सौभाग्यः शोभनाभिधः ।

अतिगण्डः सुकर्माख्यो धृतिः शूलाभिधानकः ॥ २९ ॥

गण्डो वृद्धिध्रुवश्चाथ व्याघातो हर्षणाह्वयः ।

वासिद्धिव्यतीपातो वरियान्परिघः शिवः ॥ ३० ॥

सिद्धिः साध्यः शुभः शुक्लो ब्रह्मा एन्द्रोऽथ वैधृतिः ।

योगानां ज्ञेयमेतेषां स्वनामसदृशं फलम् ॥ ३१ ॥

वाक्पतेरर्कनक्षत्रं श्रवणाचन्द्रमेव गणयेत्तद्युति कुर्याद्योगः च ।

गणयेत्तद्युतिं कुर्याद्योगः स्यावृक्षशेषतः ॥ ३२ ॥

विकुम्भ, प्रीति, आयुष्मान्, सौभाग्य, शोभन, अतिगंड, सुकर्मा, धृति, शूल, गण्ड, वृद्धि, ध्रुव, व्याघात, हर्षण, वज्र, सिद्धि, व्यतीपात, वरीयान, परिधः, शिव, सिद्धि, साध्य, शुभ, शुक्ल, ब्रह्मा, ऐन्द्र और वेधृति ये सत्ताईस योग शास्त्र में कथित है।

बबादिसप्तकरणानि -

बबाह्वयं बालवकौलवाख्ये, ततो भवेत्तं तिलनामधेयम् ।

गराभिधानं वणिजं च विष्टिरित्याहुरार्या करणानि सप्त ॥ ३३ ॥

चतुर्दशी या शशिना विहीना तस्या विभागे शकुनिद्वितीये ।

दर्शाद्ययोस्तच्चतुरंघ्रिनागो किंस्तुघ्नमाद्ये प्रतिपद्दले च ॥ ३४ ॥

बब, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज, विष्टि ये सात चर करण है और कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के अन्त में शकुनि अमावास्या के पूर्वार्ध में चतुष्पद, उत्तरार्ध में नाग, शुक्ल प्रतिपदा के पूर्वार्ध में किंस्तुघ्न ये चार स्थिर करण हैं।

विष्टि-ज्ञान-

एकादश्यां चतुर्थ्यां च शुक्ले पक्षे परे दले ।

अष्टम्यां पूर्णिमायां च भद्रा पूर्वदले स्मृता ॥ ३५ ॥

तृतीयायां दशम्यां च कृष्णे पक्षे परे दले ।

सप्तम्यां च चतुर्दश्यां भद्रा पूर्वदले भवेत् ॥ ३६ ॥ (वृहदवकाडाचक्रम्)

शुक्ल पक्ष की एकादशी, चतुर्थी के उत्तरार्ध में और अष्टमी, पूर्णिमा के पूर्वार्ध में भद्रा होती है । कृष्ण पक्ष की तृतीया, दशमी के उत्तरार्ध और सप्तमी, चतुर्दशी के पूर्वार्ध में भद्रा होती है।

वार नाम –

आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुधश्चाथ बृहस्पतिः।

शुक्रः शनैश्चरश्चैते वासराः परिकीर्तिताः॥१॥

आदित्य = रवि, चन्द्रमा = सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि ये सात वार हैं ॥१॥

नक्षत्र नाम –

अश्विनी भरणी चैव कृत्तिका रोहिणी तथा।

मृगशीर्षस्तथाऽऽर्द्रा च पुनर्वसुरतः परम् ॥१॥

पुष्याश्लेषामघाः प्रोक्ताः पूर्वा चोत्तरफाल्गुनी।

हस्तश्चित्रा तथा स्वाती विशाखा तदनन्तरम् ॥२॥

अनुराधा तथा ज्येष्ठा मूलभं च ततः परम् ।

पूर्वाषाढोत्तरषाढाऽभिजिच्च श्रवणं ततः॥3॥

धनिष्ठा च ततो ज्ञेया शततारा ततः परम् ।

पूर्वाभाद्रपदा प्रोक्ता ततश्चोत्तरभाद्रकम् ॥४॥

रेवती चेति भानां हि नामानि कथितानि वै।

सप्तविंशतिसंख्यानां सदसत्फलहेतवे॥५॥

अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशीर्ष, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, अभिजित, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा और रेवती ये २८ नक्षत्र कहे गए हैं । पर मूल में २७ नक्षत्रों का ही नाम आया है, इसका कारण यह हैं कि उत्तराभाद्रपदा का अन्तिम चतुर्थांश

और श्रवण का प्रथम पंचदशांश मिलकर अभिजित् का मान है। इसलिए अभिजित् की गणना अलग नहीं होती है।

संहिताग्रन्थों में तो नक्षत्रों का अलग-अलग भोग बताया गया है। उसमें सब नक्षत्रों के भोग का योग चक्रकला में २१६०० घटाकर शेष अभिजित् का भोग माना है।

नासत्याऽन्तकवह्निधातृशशभृद्रुद्रादितीज्योरगा

ऋक्षेशाः पितरो भगोऽर्य्यमरवी त्वष्टा समीरः क्रमात् ।

शक्राग्नी खलु मित्र इन्द्रनिऋतिक्षीराणि विश्वे विधि

गोविन्दो वसुतोयपाऽजचरणाऽहिर्बुध्न्यपूषाभिधाः ॥ १ ॥

अश्विनी आदि नक्षत्रों के क्रम से अश्विनीकुमार, यमराज, अग्नि, ब्रह्मा, चन्द्रमा, शिव, अदिति, बृहस्पति, सर्प, पितर, भग, अर्यमा, सूर्य, त्वष्टा, वायु, इन्द्र और अग्नि, मित्र, इन्द्र, नैऋत्य (राक्षस), जल, विश्वेदेव, ब्रह्मा, विष्णु, वसु, वरुण, अजपात्, अहिर्बुध्न्य, तथा पूषा स्वामी होते हैं ॥ १ ॥

नक्षत्र	स्वामी	नक्षत्र	स्वामी	नक्षत्र	स्वामी	नक्षत्र	स्वामी
अश्वि.	अ.कु.	पुष्य	बृह.	स्वाती	वायु	अभिजित्	ब्रह्मा
भरणी	यम	आश्ले.	सर्प	विशा.	इन्द्राग्नी	श्रवण	विष्णु
कृति.	अग्नि	मघा.	पितर	अनु.	मित्र	धनिष्ठा	वसु
रोहि.	ब्रह्मा	पू.फा.	भग	ज्येष्ठा	इन्द्र	शतभिष	वरुण
मृग.	चन्द्रमा	उ.फा.	अर्यमा	मूल	निर्ऋति (राक्षस)	पू. भाद्रपद	अजपाद्
आर्द्रा	शिव	हस्त रवि	रवि	पू.षा.	जल	उ.भाद्र.	अहिर्बुध्नय
पुनर्वसु	अदिति	चित्रा	त्वष्टा	उ.षा.	विश्वेदेव	रेवती	पूषा

ध्रुव (स्थिर) संज्ञक नक्षत्र -

उत्तरात्रय-रोहिण्यो भास्करश्च ध्रुवं स्थिरम् ।

तत्र स्थिरं बीजगेहशान्त्यारामादि सिद्धये ॥ २ ॥ ॥

तीनों उत्तरा (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद), रोहिणी नक्षत्र तथा रविवार ध्रुव एवं स्थिरसंज्ञक होते हैं। इनमें बीज बपन, गृहनिर्माण, शान्तिकर्म (यज्ञ अनुष्ठान आदि) वाटिका आदि का निर्माण सिद्धिदायक होता है। [मृदुसंज्ञक नक्षत्रोक्त कर्म भी ध्रुवसंज्ञक नक्षत्रों में किए जा सकते हैं।

चर संज्ञक नक्षत्र--

स्वात्यादित्ये श्रुतेस्त्रीणि चन्द्रश्चापि चरं चलम्।

तस्मिन् गजादिकारोहो वाटिकागमनादिकम् ॥ ३ ॥

स्वाती, पुनवर्सु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा नक्षत्र एवं सोमवार की चर अथवा चल संज्ञा होती है। इसमें हाथी घोड़ा आदि वाहनों पर चढ़ना, उद्यान में घूमना-फिरना या उद्यान देखने के निमित्त यात्रा करना शुभ होता है। लघु संज्ञक नक्षत्रों से क्रियमाण कार्य भी चर नक्षत्रों में किए जाते हैं।

उग्र संज्ञक नक्षत्र--

पूर्वात्रयं याम्यमघे उग्रं क्रूरं कुजस्तथा ।

तस्मिन् घाताग्निशाठ्यानि विषशस्त्रादि सिद्धयति ॥ ४ ॥

पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाड़ा, पूर्वाभाद्रपद, भरणी, मघा, एवं मंगलवार उग्र एवं क्रूर संज्ञक होते है। इसमें घातकर्म (धोखे से मारना), अग्निकर्म (भट्ठा लगाना, आग लगाना), शठता (दुष्टाचरण), विष- प्रयोग एवं शस्त्र कर्म (शस्त्रों का निर्माण अथवा प्रयोग) सिद्धिकारक होता है। दारुण संज्ञक नक्षत्रों में कहे गये कार्य भी इन नक्षत्रों में किए जाते हैं ।

मिश्र संज्ञक नक्षत्र--

विशाखाग्नेयभे सौम्यो मिश्र साधारणं स्मृतम् ।

तत्राग्निकार्यं मिश्र च वृषोत्सर्गादि सिद्धयति ॥ ५ ॥

विशाखा और कृत्तिका नक्षत्र एवं बुधवार मिश्र संज्ञक एवं साधारण संज्ञक होते हैं। इनमें अग्निकार्य (अग्निहोत्र, भट्ठी, आदि), मिश्रकार्य (कई प्रकार के कार्यों का एकसाथ सम्पादन), अभीष्ट कामना की पूर्ति हेतु वृषोत्सर्ग तथा उग्र कार्यों का सम्पादन सिद्धिदायक होता है।

क्षिप्र संज्ञक नक्षत्र-

हस्ताश्वि-पुष्याभिजितः क्षिप्रं लघु गुरुस्तथा ।

तस्मिन् पण्यरतिज्ञानं भषाशिल्पकलादिकम् ॥ ६ ॥

हिन्दी-हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित नक्षत्र और गुरुवार क्षिप्र एवं लघु संज्ञक होते हैं। इनमे व्यापार (दुकान खोलना), स्त्रीसहवास, आभूषण निर्माण एवं धारण, शिल्प (काष्ठ एवं पाषाण सम्बन्धी मूर्तिकला) तथा गीत-वाद्य और नृत्य सम्बन्धी कलाओं का अभ्यास करना शुभप्रद होता है ॥ ६ ॥

मृदुमैत्र-संज्ञक नक्षत्राणि-

मृगान्त्यचित्रामित्रर्क्षं मृदु मैत्रं भृगुस्तथा ।

तत्र गीताम्बरक्रीडा मित्रकार्यं विभूषणम् ॥ ७ ॥

मृगशिरा, रेवती, चित्रा और अनुराधा नक्षत्र एवं शुक्रवार मृदु या मैत्र संज्ञक होते हैं। इनमें संगीत का अभ्यास, नववस्त्रधारण तथा खेलकूद (बाल, क्रिकेट, दौड़ आदि) का अभ्यास तथा मित्रों से सम्बन्धित कार्य हितकर होते हैं । ॥ ७ ॥

तीक्ष्ण संज्ञक-नक्षत्र-

मूलेन्द्रार्द्राहिभं सौरिस्तीक्ष्णं दारुणसंज्ञकम् ।

तत्राभिचारघातोग्रभेदाः पशुदमादिकम् ॥ ८ ॥

मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा, नक्षत्र तथा शनिवार तीक्ष्ण एवं दारुण संज्ञक होते हैं। इनमें मन्त्र प्रयोग द्वारा घात (मारण आदि क्रिया), धोखे से प्रहार, कठोर कर्म, विग्रह (लड़ाई-झगड़ा, अलगाव) तथा पशुओं का प्रशिक्षण एवं बन्धन आदि कार्य सिद्धिदायक होते हैं।

ऊर्ध्वार्धस्तिर्यङ् मुख नक्षत्र-

मूलाहिमिश्रोग्रमधोमुखं भवेदूर्ध्वास्यमाद्रेज्यहरित्रयं ध्रुवम् ।

तिर्यङ्मुखं मैत्रकरानिलादितिज्येष्ठाश्विभानीदृशकृत्यमेषु सत् ॥९॥

मूल, आश्लेषा. मिश्रसंज्ञक (विशाखा, कृत्तिका) उग्रसंज्ञक (पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपदा, भरणी, मघा) अधोमुख संज्ञक नक्षत्र है। आर्द्रा, पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा और ध्रुवसंज्ञक (उत्तरा-फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी) नक्षत्र ऊर्ध्वमुखसंज्ञक हैं तथा मैत्रसंज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा और अनुराधा), हस्त, स्वाती, पुनर्वसु, ज्येष्ठा एवं अश्विनी नक्षत्र तिर्यङ्मुख संज्ञक हैं। नक्षत्रों के स्वरूप के अनुसार कार्य करना शुभ होता है। यथा-ऊर्ध्वमुख संज्ञक नक्षत्रों में ऊपर की तरफ होने वाले कार्य-गृहनिर्माण, देवालय आदि का निर्माण, वृक्षारोपण आदि कार्य, अधोमुख संज्ञक नक्षत्रों में नीचे की तरफ होने वाले कार्य कूप- तालाब आदि खोदना, हैण्डपम्प लगाना तथा तिर्यङ्मुख नक्षत्रों में सड़क-पुल, रेलवे लाइन आदि का निर्माण तथा वाहनों का सञ्चालन शुभ होता है।

संज्ञा	नक्षत्र	वार
ध्रुव (स्थिर)	उ०फा०, उ०षा०, उ०भा०, रोहिणी	रविवार
चर (चल)	स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा	सोमवार
उग्र (क्रुर)	पू०फा०, पू०षा०,पू०भा०, भरणी मघा	भौमवार
मिश्र (साधारण)	विशाखा ,कृत्तिका	बुधवार
क्षिप्र (लघु)	अश्विनी, हस्त, पुष्य, अभिजित्	गुरुवार
मृदु (मैत्र)	मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा	शुक्रवार
तीक्ष्ण (दारुण)	मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा, श्लेषा	शनिवार
अधोमुख	मूल, आश्लेषा, विशाखा, कृत्तिका, तीनों पूर्वा, भरणी, मघा	
ऊर्ध्वमुख	आर्द्रा, पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा, उत्तरा ३, रोहिणी	
तिर्यङ्मुख	अनुराधा, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, हस्त, स्वाती, पुनर्वसु, ज्येष्ठा, अश्विनी	

नववस्त्राभूषणधारण मुहूर्तः-

पौष्णध्रुवाश्विकरपञ्चकवा सवेज्या-

दित्ये प्रवालरदशङ्खसुवर्णवस्त्रम् ।

धार्यं विरक्तिशनिचन्द्रकुजेऽह्नि रक्तं

भौमे ध्रुवादितियुगे सुभगा न दध्यात् ॥ १०॥

रेवती, ध्रुवसंज्ञक (तीनों उत्तरा, रोहिणी), अश्विनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, धनिष्ठा, पुष्य, तथा पुनर्वसु नक्षत्रों में रिक्ता (४, ६, १४) तिथियों तथा चन्द्र, मंगल एवं शनिवारों को छोड़कर शेष तिथि वारों में मूंगा, हाथी दांत, शंख तथा सोने के आभूषणों को धारण करना चाहिए। लालवस्त्र मंगलवार को धारण करना चाहिए । ध्रुवसंज्ञक (तीनों उत्तरा, रोहिणी) पुनर्वसु और पुष्यनक्षत्रों में सौभाग्यशालिनी स्त्री को वस्त्राभूषण नहीं धारण करना चाहिए।

विचारणीय-सुभगा स्त्रियों के लिए शतभिष नक्षत्र में स्नान तथा ध्रुवादिति पुष्य नक्षत्रों में नववस्त्र एवं आभूषण धारण करने का निषेध है विवरण प्राप्त होता है -

रोहिणीगुरुपुनर्वसूत्तरे या विभर्त्ति नववस्त्रभूषणम् ।

सा न योषिदवलम्बते पति स्नानमाचरति वारुणेऽपि या ॥

रोहिणी पुष्य पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद नक्षत्रों में जो नारी नववस्त्र एवं आभूषण धारण करती है तथा शतभिष नक्षत्र में स्नान करती है वह पति का अवलम्बन नहीं कर पाती है अर्थात् पति हीन हो जाती है।

इसी कारण से उक्त श्लोक में "ध्रुवादिति युगे सुभगा न दध्यात्" लिखा गया है।

स्फुटित वस्त्र का फल-

वस्त्राणां नवभागकेषु च चतुष्कोणेऽमरा राक्षसा

मध्यत्र्यंशगता नरास्तु सदृशे पाशे च मध्यांशयोः ।

दग्धे वा स्फुटितेऽम्बरे नवतरे पङ्क्तादिलिप्तेन स-

अक्षोंऽशें नृसुराशयोः शुभमसत्सर्वांद शके प्रान्ततः ॥ ११ ॥

नवीन वस्त्र के आकस्मात् अग्नि से जलने, फटने अथवा कीचड आदि के संयोग से मलिन हो जाने पर उसके शुभाशुभ का ज्ञान इस प्रकार करना चाहिए।

नवीन वस्त्र को नव भागों में विभक्त कर चारों कोणों में स्थित भागों मध्यस्थित तीन भागों में में राक्षसों की तथा किनारे से लगे में देवताओं की मध्य स्थित दो भागों में मनुष्यं की स्थापना करनी चाहिये। यदि राक्षसों बाले नाग में जले, कटे-फटे या पंक (कीचड) आदि से लिप्त हो तो बजुन फल, देव और मनुष्यों के भाग में जलने फटने एवं मलिन होने से शुभ होता है। यदि सभी (देव-राक्षस एवं मनुष्य) के अंशों में किनारे से उक्त पढ़ना हो तो अशुभ होता है॥ ११ ॥

वस्त्रों के जलने एवं फटने से विविध आकृतियाँ बन जाती हैं। उन आकृतियों का स्वरूपानुसार फल अन्य (कश्यप) संहिताओं में बतलाया गया है-

राक्षसों के भाग में-

शङ्खवस्त्राम्बुजच्छत्रध्वजतोरणसन्निभाः ।
श्रीवत्ससर्वतोभद्रनन्द्यावर्तगृहोपमा ॥
वर्धमानस्वस्तिकेभमृगकूर्मझषाकृतिः ।
छेदाकृतिर्दैत्यभागेऽप्यायुरर्थप्रदा नृणाम् ॥

देवभाग में -

खरोष्ट्रोलूककाकाहिजम्बूकश्ववृकोपमाः ।
त्रिकोणसूर्याकृतयो देवभागेऽप्यशोभनाः ॥

परिहार-

निन्दितं वसनं दद्याद् द्विजेभ्यः स्वर्णसंयुतम् ।
आशिषो वाचनं कृत्वा त्वन्यद्वस्त्रं च धारयेत् ॥

आवश्यक होने पर वस्त्र धारण के लिए परिहारः-

विप्राज्ञया तथोद्वाहे राज्ञा प्रीत्यार्पितञ्च यत् ।
निन्द्येऽप धिष्ण्ये वारादौ वस्त्रं धार्यं जगुर्बुधाः ॥ १२ ॥

ब्राह्मण की आज्ञा से, वैवाहिक कार्यक्रमों में तथा राजा द्वारा प्रसन्नता पूर्वक दिए जाने पर निन्दित नक्षत्र, दिन एवं योगों में भी नवीन वस्त्र धारण कर लेना चाहिए। ऐसा विद्वानों ने कहा है।

लता वृक्ष रोपण राजदर्शन विक्रयादि मुहूर्त्ताः—

राधामूलमृदुध्रुवर्क्षवरुणक्षिप्रैर्लतापादपा-

रोपोऽथो नृपदर्शनं ध्रुवमृदुक्षिप्रश्रवोवासवैः ।

तीक्ष्णोग्राम्बुपभेषु मद्यमुदितं क्षिप्रान्त्यवहनीन्द्रभा-

दित्येन्द्राम्बुपवासवेषु हि गवां शस्तः क्रयो विक्रयः ॥ १३ ॥

विशाखा, मूल, मृदुसंज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा और अनुराधा), ध्रुवसंज्ञक (उ० फा०, उ० पा०, उ० भा०, रोहिणी) शतभिष, क्षिप्रसंशक (हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित) नक्षत्रों में लता, पौधा, बुन आदि का रोपण करना, ध्रुव (तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित, श्रवण एवं घनिष्ठा) नक्षत्रों में राजा का दर्शन, तीक्ष्णसंज्ञक (मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा), उग्रसंज्ञक (तीनों पूर्वा, भरणी, मघा) और शतभिष नक्षत्रों में मद्य (मदिरा आसव-अरिष्टादि) का निर्माण एवं विक्रय करना, तथा क्षिप्र (हस्त, अश्विनी, अभिजित, पुष्य), रेवती, विशाखा, पुनर्वसु, ज्येष्ठा, शतभिषा एवं धनिष्ठा नक्षत्रों में गाय-बैल का क्रय-विक्रय करना (खरीदना- बेचना) शुभ होता है।

पशुओं की रक्षा मुहूर्तः --

लग्ने शुभे चाष्टमशुद्धिसंयुते रक्षा पशूनां निजयोनिभे चरे ।

रिक्ताऽष्टमी दर्शकुजश्रवोध्रुवत्वाष्ट्रेषे यानं स्थितिवेशनं न सत् ॥ १४॥

गुणलग्न (२,३,४,६,७,६,१२) में लग्न से अष्टम भाव के शुद्ध रहने पर. चर संज्ञक (स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा) नक्षत्रों तथा अपनी-अपनी योनि वाले नक्षत्र में (जिस नक्षत्र की जो योनि हो उस नक्षत्र में उसी) पशु का पालन तथा पशु रक्षा करनी चाहिए।

रिक्ता तिथि (४, ६, १४), अष्टमी तथा अमावस्या तिथियों में मंगल एवं रविवार दिनों में श्रवण, तीनों उत्तरा, रोहिणी तथा चित्रा नक्षत्र में पशुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान में लाना-लेजाना तथा गोष्ठ (पशुशाला) में रखना शुभकारक होता है।

औषधि सेवन-सूची कर्म मुहूर्तः--

भैषज्यं सलघुमृदुचरे मूलभे द्वद्यङ्गलग्ने

शुक्रेन्दिज्ये विदि च दिवसे चापि तेषां रवेश्च ।

शुद्धे रिष्फद्यूनमृतिगृहे सत्तिथौ नो जनेर्भें

सूचीकर्माऽप्यदिति-वसुभ-त्वाष्ट्र-मित्राश्वि-पुष्ये ।॥ १५ ॥

लघु (हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित्), मृदु (मृगशीर्ष, रेवती, चित्रा अनुराधा), चर (स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा), मूल नक्षत्रों में द्विस्वभाव (३,६,६,१२) लग्नों में शुक्र, चन्द्र, गुरु और बुध के द्विस्वभाव राशियों में स्थित रहने पर तथा इन्हीं ग्रहों के दिनों में और रविवार (अर्थात् रवि, सोम, बुध वृहस्पति और शुक्रवार) को लग्न से द्वादश, सप्तम और अष्टम भावों के शुद्ध रहने पर शुभ तिथियों में अपनी जन्मराशि और नक्षत्र को छोडकर औषधि सेवन करना शुभकारक होता है। पुनर्वसु, धनिष्ठा, चित्रा, अनुराधा, अश्विनी, पुष्य, नक्षत्रों में सूचीकर्म (सिलाई-कढ़ाई) का कार्य शुभ है।

क्रयविक्रय मुहूर्तः--

क्रयक्षे विक्रयो नेष्टो विक्रयक्षे क्रयोऽपि न ।

पौष्णाम्बपाश्विनीवातश्रवश्चित्राः क्रये शुभाः ।॥ १६ ॥

क्रय हेतु बताये गये नक्षत्रों में वस्तुओं का विक्रय करना तथा विक्रय हेतु किए जानेवाले नक्षत्रों में क्रय करना शुभकारक नहीं होता। क्रय (वस्तुओं को खरीदने के लिए रेवती, शतभिष, अश्विनी, स्वाती, श्रवण और चित्रा नक्षत्र शुभ होते हैं।

इसके समाधान हेतु पीयूषधारा टीकाकार श्रीगोविन्द ने लिखा है-- "क्रये विक्रयोन्यतरस्य क्रयिणः कदाचिन्मुहूर्तासम्भवे ज्ञेयः अनावश्यक- त्वात् ।" वस्तुतः क्रय और विक्रय दोनों अन्योन्याश्रित कार्य हैं। मूल्य लेकर वस्तु को देना विक्रय तथा मूल्य देकर वस्तु को लेना क्रय होता है। ये दोनों कार्य एक साथ ही सम्पन्न होते है व्यावहारिक समाधान यह है कि विक्रेता क्रय के मुहूर्त में वस्तु को खरीद कर रख लेता है तथा विक्रय के मुहूर्त में उसे विक्रय हेतु दुकान में रखता है। क्रय करने वाला क्रय मुहर्त्त में उसे खरीदता है।

विक्रय विपणि मुहूर्त -

पूर्वाद्वीशकृशानुसार्पयमभे केन्द्रद्विकोणे शुभैः

षट्त्र्यायेष्वशुभैर्विना घटतनुं सन्विक्रयः सत्तिथौ ।

रिक्ताभौमघटान्विना च विपणिर्मित्रध्रुवक्षिप्रभै-

लग्ने चन्द्रसिते व्ययाष्टरहितैः पापैः शुभैर्द्वर्यायखे ॥ १७ ॥

पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, विशाखा, कृत्तिका, आश्लेषा तथा भरणी नक्षत्रों में केन्द्र (१,४,७,१०), द्वितीय तथा कोण (५,६) भावों में शुभग्रहों के रहने पर ६,३,११ भावों में अशुभ ग्रहों के रहने पर, कुम्भलग्न को छोड़कर शेष लग्नों में तथा शुभ तिथियों में विक्रय (वस्तुओं का वेचना) शुभ होता है।

रिक्ता (४,६,१४) तिथियों, मंगलवार एवं कुम्भ लग्न को छोड़कर शेष तिथि-वार लग्नों में मित्र (मृगशिरा, रेवती, चित्रा और अनुराधा), ध्रुवसंज्ञक (उत्तरात्रय, रोहिणी), क्षिप्र (हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित्) नक्षत्रों में, लग्न में चन्द्र और शुक्र के स्थित रहने पर, द्वादश और अष्टम भाव पापग्रहों से रहित तथा द्वितीय एकादश और दशम भाव शुभग्रहों से युक्त रहने पर दुकान खोलने का शुभ मुहूर्त होता है।

हस्त्यश्व मुहूर्त्तः

क्षिप्रान्त्यवस्विन्दुमरुज्जलेशादित्येष्वरिक्तारविने प्रशस्तम् ।

स्याद्वाजिकृत्त्यं त्वथ हस्तिकार्यं कुर्यान्मृक्षिप्रचरेषु विद्वान् ॥ १८।

क्षिप्रसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित्) रेवती, धनिष्ठा, मृगशिरा, स्वाती, शतभिष एवं पुनर्वसु नक्षत्रों में रिक्त जीव और भौमवार को छोड़कर शेष तिथि-वारों में घोड़े से सम्बन्धित (अश्वारोहण आदि) कार्य करना प्रशस्त है।

इसी प्रकार मृदु (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा), क्षिप्र (हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित्), चर (स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शत- भिषा) नक्षत्रों में विद्वान् पुरुष को हाथियों से सम्बन्धित कार्य करें।

आभूषण-निर्माण मुहूर्त्तः--

स्याद् भूषाघटनं त्रिपुष्करचरक्षिप्रध्रुवे रत्नयुक्

तत्तीक्ष्णोग्रविहीनभे रविकुजे मेषालिसिंहे तनौ ।

तन्मुक्तासहितं चरध्रुवमृदुक्षिप्रे शुभे सत्तनौ

तीक्ष्णोग्राश्विमृगे द्विवैकहने शस्त्रं शुभं घट्टितम् ॥ १९ ॥

त्रिपुष्कर योग में चर-क्षिप्र-ध्रुव संज्ञक (स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष, हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित, तीनों उत्तरा मघा रोहिणी) नक्षत्रों में आभूषण का निर्माण करना शुभ होता है। तीक्ष्ण और उग्र संज्ञक (मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा, तीनों पूर्वा, भरणी और मघा) नक्षत्रों को छोड़कर शेष नक्षत्रों में, रवि एवं भौमवार को मेष, वृश्चिक और सिंह लग्न में रत्नों से युक्त आभूषण बनाना शुभ होता है। चर, ध्रुव, मृदु, क्षित्र संज्ञक (स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शततारका, तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी, पुष्य) नक्षत्रों में शुभवारों तथा शुभ लग्न में मुक्ता (मोती) युक्त आभूषण का निर्माण शुभ होता है।

तीक्ष्ण-उग्रसंज्ञक (मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा, तीनों पूर्वा, भरणी, मघा) नक्षत्रों में तथा अश्विनी, मृगशिरा, विशाखा एवं कृत्तिका नक्षत्रों में शस्त्र का निर्माण शुभकारक होता है ॥ १६ ॥

मुद्रापातन-वस्त्र प्रक्षालन मुहूर्त्तः--

मुद्राणां पातनं सद्ध्रुवमृदुचरभक्षिप्रभैर्वीन्दुसौरै

घस्रे पूर्णाजयाख्ये न च गुरुभृगुजास्ते विलग्ने शुभैः स्यात् ।

वस्त्राणां क्षालनं सद्वसुहय दिन कृत्पश्वकादित्यपुष्ये

नो रिक्तापर्वषष्ठीपितृदिनरविजज्ञेषु कार्यं कदापि ॥२०॥

ध्रुव (तीनों उत्तरा, रोहिणी), मृदु (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा), क्षिप्र (हस्त, अश्विनी, पुष्य) नक्षत्रों में सोम-शनि वारों को छोड़कर शेष बारों में पूर्णा (५,१०,१६५), जया (०,८,१३) तिथियों में गुरु और शुक्र के उदित रहने पर तथा लग्न में शुभ ग्रहों के स्थित रहने पर मुद्रा (सिक्का) डालना शुभ होता है।

धनिष्ठा, हस्त तथा हस्त से पाँच नक्षत्र (हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाता, अनुराधा), पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्रों में वस्त्रों का प्रक्षालन (कपडे धोना) शुभ होता है। रिक्ता (४,६,१४) आमावास्या, षष्ठी तिथियों

में माता-पिता के श्राद्ध वाले दिन में तथा शनि और बुधवार में कभी भी वस्त्रों ही धुलाई नहीं करनी चाहिए।

नक्षत्रों की अन्धादि संज्ञा-

अन्धाक्षं वसुपुष्यधातृजल भद्वीशार्यमान्त्याभिधं,

मन्दाक्षं रविविश्वमित्रजलपाइलेश्वाश्विचान्दं भवेत् ।

मध्याक्षं शिवपित्रजैकचरगत्वाष्ट्रेन्द्रविध्यन्तक

स्वक्षं स्वात्यदितिश्रवोदहनभाहिर्बुध्न्यरक्षो भगम् ॥ २२ ॥

हिन्दी--धनिष्ठा, पुष्य, रोहिणी, पूर्वाषाढा, विशाखा, उत्तराफाल्गुनी, रेवती नक्षत्रों की अन्धाक्ष संज्ञा, हस्त, उत्तराषाढा, अनुराधा, शतभिषा, आश्लेषा, अश्विनी, मृगशिरा नक्षत्रों की मन्दाक्ष संज्ञा, आर्द्रा, मघा, पूर्वा-भाद्रपदा, चित्रा, ज्येष्ठा, अभिजित् और भरणी नक्षत्रों की मध्याक्ष संज्ञा तथा स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, कृत्तिका, उत्तराभाद्रपदा, मूल, पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रों की सुलोचन संज्ञा होती है ॥ २२ ॥

विमर्शः - रोहिणी से आरम्भ कर चार-चार नक्षत्र क्रम से अन्ध मन्द, मध्य तथा सुलोचन होते हैं ।

अन्धादि नक्षत्रों के फल -

विनष्टार्थस्य लाभोऽन्धे शीघ्रं मन्दे प्रयत्नतः ।

स्याद्दूरे श्रवण मध्ये, श्रुत्यासी न सुलोचने ॥ २३ ॥

अन्धाक्ष संज्ञक नक्षत्रों में नष्ट वस्तु का शीघ्र ही नाम प्राप्ति हो जाता है। मन्दाक्ष संज्ञक नक्षत्रों में नष्ट वस्तु का लाभ प्रयत्न से होता है। मध्य संज्ञक नक्षत्र में नष्ट वस्तु दूरस्थ स्थान में है यह सुनने को मिलता है तथा सुलोचन संज्ञक नक्षत्र में नष्ट हुई वस्तु के सम्बन्ध में न तो सुनने को मिलता है न तो वस्तु ही मिलती है।

अन्धादि-नक्षत्रवोधक-तालिका

रोहिणी, पुष्य उ फा, विशाखा उ.षा, धनिष्ठा रेवती मृगशिरा,

अन्ध	मन्द	मध्य	सुलोचन

रोहिणी, पुष्य, उ०फा०, विशाखा, पू.षा. धनिष्ठा, रेवती	मृगशिरा, आश्ले. हस्त, अनुराधा, उ.षा. शतभिष अश्विनी	आर्द्रा, मघा, चित्रा, ज्येष्ठा, अभिजित, पु.भा., भरणी	पुनर्वसु, पू.फा. स्वाती, मूल, श्रवण, उ.भा. कृत्तिका
शीघ्र लाभ	प्रयत्न से लाभ	दूरस्थ सूचना मात्र	अलाभ (न सूचना, न लाभ)

धन व्यवहार मुहूर्तः--

तीक्ष्ण मिश्रध्रुवोग्रैर्यद् द्रव्यं दत्तं निवेशितम् ।

प्रयुक्तं च विनष्टं च विष्टयां पाते च नाप्यते ॥ २४ ॥

तीक्ष्ण, मिश्र, ध्रुव एवं उग्र संज्ञक (मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा, विशाखा, कृत्तिका, तीनों उत्तरा, रोहिणी, तीनों पूर्वा, भरणी, तथा मघा नक्षत्रों में, भद्रा और व्यतिपात में जो धन किसी को दिया जाए, किसी के पास सुरक्षित रखा जाए व्यापार में लगाया जाए अथवा नष्ट हो जाए वह धन पुनः वापस नहीं आता है।

जलाशय खनन-नृत्यारम्भ मुहूर्तः--

मित्रार्कध्रुववासवाम्बुपमघातोयान्त्यपुष्येन्दुभिः

पापैहीनबलैस्तनौ सुरगरौ ज्ञे वा भृगौ खे विधौ ।

आप्ये सर्वजलाशयस्य खननं व्यम्भोघैः सेन्द्रभै-

स्तैर्नृत्यं हिबुके शुभेस्तनुगृहे ज्ञेऽब्जे ज्ञराशौ शुभम् ॥ २५ ॥

अनुराधा, हस्त, तीनों उत्तरा, रोहिणी, धनिष्ठा, शतभिषा, मघा, पूर्वाषाढा, रेवती, पुष्य और मृगशिरा, नक्षत्रों में, पाप-ग्रहों के निर्बल होने पर, लग्न में गुरु, अथवा बुध एवं दशम भाव में शुक्र के स्थित रहने पर, तथा चन्द्रमा के जलचर राशि (कर्क, मकर, कुम्भ और मीन) में स्थित रहने पर सभी प्रकार के जलाशय (कूप, वापी, तालाब) का निर्माण (खोदना) शुभ होता है ।

उक्त पठित नक्षत्रों में मघा और पूर्वाषाढा को छोड़कर शेष नक्षत्रों में तथा ज्येष्ठा नक्षत्र में, चतुर्थ भाव में शुभग्रह, लग्न में बुध तथा बुध की राशि कन्या और मिथुन में चन्द्रमा के आने पर नृत्य का आरम्भ (शिक्षा ग्रहण करना) शुभकारक होता है ॥ २५ ॥

सेवा-मुहूर्त्तः--

क्षिप्रे मैत्रे वित्तिसतार्केज्यवारे सौम्ये लग्नेऽकै कुजे वा खलाभे ।

योनेमैत्र्यां राशिपोश्चापि मैत्र्यां सेवा कार्या स्वामिनः सेवकेन ॥ २६॥

क्षिप्र और मैत्र संज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य, मृगशिरा, अनुराधा, चित्रा तथा रेवती नक्षत्रों में बुध, शुक्र, रवि तथा गुरुवार के दिन शुभग्रहों के लग्न में स्थित होने पर तथा पापग्रहों के दशम एकादश भाव में जाने पर सेवक को अपने स्वामी की सेवा का कार्य आरम्भ करना चाहिए। स्वामी और सेवक दोनों के स्थिर सम्बन्ध हेतु दोनों की योनि मैत्री और ग्रहमैत्री का विचार अवश्य कर लेना चाहिए ।

ऋणस्यादानप्रदान-मुहूर्त्तः

स्वात्यावित्यम् दुद्विवैषगुरुभे कर्णत्रयाश्वे चरे

लग्ने धर्मसुताष्टशुद्धिसहिते द्रव्यप्रयोगः शुभः ।

नारे ग्राह्यम् णं तु संक्रमदिने वृद्धौ करेऽर्कऽह्नि यत्

तद्वंशेषु भवेदृणं न च बुधे देयं कदाचिद्धनम् ॥ २७ ॥

स्वाती, पुनर्वसु, विशाखा मृदु (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा) पुष्य, श्रवण, घनिष्ठा, शतभिषा तथा अश्विनी नक्षत्रों में चर लग्न में, नवम, पञ्चम और अष्टम भाव के शुद्ध रहने पर (ग्रहो से रहित या शुभग्रहों से युक्त) द्रव्य का प्रयोग (तऋण लेना या ऋण देना अथवा व्यापार में लगाना) शुभ होता है।

मंगलवार, संक्रान्ति के दिन, बृद्धियोग में तथा रविवार को हस्त नक्षत्र में ऋण ग्रहण नहीं करना चाहिये। उक्त योग में लिया गया धन वंश (मन्तान) के ऊपर ऋण होता है (अर्थात् उस ऋण को पुत्र-पौत्र भी नहीं चुका सकते।) तथा बुधवार को कभी भी धन (ऋण) नहीं देना चाहिए ।

हलप्रवहण मुहूर्त्तः -

शनि मूलद्वीशमघाचरध्रुवम् दुक्षिप्रैविनाऽर्क

पापैर्दीनबविधौ जललवे शुक्रे विधौ मांसले ।

लग्ने देवगुरौ हलप्रवहणं शस्तं, न सिंहे घटे

कर्काजंनघटे तनौ क्षयकरं रिक्तासु षष्ठयां तथा ॥ २८ ॥

मूल, विशाखा, मघा, स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित् नक्षत्रों में शनि-रवि को छोड़कर शेष दिनों में पापग्रहों के निर्बल होने पर, चन्द्रमा के

जलचर राशियों के नवमांश में स्थित रहने पर शुक्र और चन्द्रमा के बलयुक्त रहने पर तथा लग्न में गुरु के स्थित रहने पर हल-प्रवहण (खेत की जुताई) करना शुभ होता है। सिंह, कुम्भ, कर्क, मेष, मकर तथा तुला लग्नों में, रिक्ता (४,६,१४) एवं पष्ठी तिथियों में हल चलाना अशुभ होता है ॥ २८ ॥

बीजवपन मूहूर्त्त --

एतेषु श्रुतिवारुणादितिविशाखोडूनि भौमं विना

बीजोप्तिर्गविता शुभा, त्वगुभतोऽष्टान्नीन्दुरामोदयः ।

रामेन्द्वग्नि युगान्यसच्छुभकराण्युप्ती इलेऽर्कोन्झिताद्

भाद्रामाष्टनवाष्टभानि मुनिभिः प्रोक्तान्यसत्सन्ति च ॥ २३ ॥

हलप्रवहण में कहे गये नक्षत्रों एवं बारों में श्रवणः शतभिषा, पुनर्वसु, विशाखा नक्षत्र एवं भौमवार को छोड़कर शेष नक्षत्र एवं दिनों में अर्थात् मूल, मघा, स्वाती, धनिष्ठा, उ० फा०, उ०पा०, उ० भा०, रोहिणी, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी, पुष्य और अभिजित् नक्षत्रों में सोम, बुध, गुरु, शुक्र दिवसों में बीजोप्ति (बीज बोना) शुभकारक होता है।

राहुचक्र-राहु जिस नक्षत्र पर स्थित हो उस नक्षत्र से आठ नक्षत्र पर्यन्त अशुभ, अनन्तर-तीन नक्षत्र शुभ पुनः क्रम से १ नक्षत्र अशुभ, ३ शुभ, १ अशुभ. ३ शुभ तथा ४ नक्षत्र अशुभ होते हैं। राहुचक्र के अनुसार शुभ नक्षत्रों में ही बीज बोना चाहिए।

हलचक्र सूर्य द्वारा भुक्त नक्षत्र से ३ नक्षत्र अशुभ, शुभ, ९ अशुभ, तथा ८ शुभ नक्षत्र होते हैं। हलचक्र के अनुसार शुभ नक्षत्रों में हल- प्रवहण (खेत जोतना) चाहिए।

शिरा मोक्षण-विरेचन-धर्मक्रियाणाञ्च मुहर्त्तः -

त्वाष्ट्रान्मित्रकभाद् द्वयेऽम्बुपलघुश्रोत्रे शिरामोक्षणं

भौमार्केज्यविने, विरेकवमनाद्यं स्याद् बुधार्को विना ।

मित्रक्षिप्रचरध्रुवे रविशुभाहे लग्नवर्ग विदो

जीवस्यापि तनौ गुरौ निगविता धर्मक्रिया तब्बले ॥ ३० ॥

चित्रा, अनुराधा और रोहिणी नक्षत्रों से दो-दो नक्षत्र अर्थात् चित्रा-स्वाती, अनुराधा ज्येष्ठा, रोहिणी-मृगशिरा, नक्षत्रों में तथा शतभिष, लघु (हस्त, अश्विनी, पुष्य), श्रवण नक्षत्रों में तथा रवि, मंगल और गुरुवारों में शिरामोक्षण (शिरावेध) कराना हितकर होता है।

बुध और शनिवार को छोड़कर शेष दिनों में तथा उक्त ग्यारह नक्षत्रों में विरेचन (एनेमा) वमन उल्टी आदि शरीर-शोधक क्रियाओं को करना लाभप्रद होता है।

अनुराधा, क्षिप्र, चर और ध्रुव संशक (हस्त, अश्विनी, पुष्य, स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष तीनों उत्तरा तथा रोहिणी) नक्षत्रों में रविवार एवं शुभ दिनों (सोम, बुध, गुरु और शुक्र वासरों) में बुध और गुरु के षड्वर्ग में, गुरु के लग्न में स्थित रहने एवं बलवान् होने पर धार्मिक (यज्ञ अनुष्ठान आदि) कार्यों को करना शुभदायक होता है ।

विमर्श - वात-व्याधियों या नसों से सम्बन्धित रोगों में शिरावेध किया जाता था। आज भी आयुर्वेद के मर्मज्ञ नसों को वेध कर (सूई चुभाकर) रक्त निकालते हैं तथा असह्य पीड़ा से व्यक्ति आराम पाता है। इसी क्रिया को शिरावेध या शिरामोक्षण कहा जाता है। इसी प्रकार उदर व्याधि आदि विभिन्न रोगों के शमन के लिए विरेचन (जुलाब या एनीमा) द्वारा तथा वमन (उल्टी) द्वारा उदर स्वच्छ किया जाता है। इन कार्यों के लिए उपयुक्त समय (शुभ मुहूर्त्त) बताया गया है।

"मित्रक्षिप्रचरध्रुव" में कुछ विद्वानों ने मित्र शब्द का अर्थ मैत्र संज्ञक (अर्थात् मृगशीर्ष, रेवती चित्रा और अनुराधा) नक्षत्र किया है तथा कुछ विद्वानों ने 'मित्र' का अर्थ 'अनुराधा' नक्षत्र किया है। पीयूषधारा में भी मित्र से अनुराधा का ही ग्रहण किया गया है।

धान्य च्छेदन मुहूर्त्तः--

तीक्ष्णाजपादकर वह्निवसुश्रुतीन्दु-
स्वातीमघोत्तर जलान्तकतक्षपुष्ये
मन्दाररिक्तरहिते विवसेऽतिशस्ता
धान्यच्छिवा निगदिता स्थिरभे विलग्ने ॥ ३१ ॥

तीक्ष्ण संज्ञक (मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा) पूर्वाभाद्रपदा, हस्त, कृत्तिका, धनिष्ठा, श्रवण, मृगशिरा, स्वाती, मघा, तीनों उत्तरा, पूर्वाषाढ़ा, भरणी, चित्रा एवं पुष्य नक्षत्रों में शनि-मंगल और रिक्ता ४,६,१४ तिथियों को छोड़कर शेष दिन एवं तिथियों में स्थिर संज्ञक (२,५,८,११) लग्नों में धान्यच्छेदन शुभकारक होता है।

सस्यरोपणकणमर्दन मुहूर्त्तश्च--

भाग्यार्यमधुतिमघेन्त्रविधातृमूल-

मैत्रान्त्यभेषु कथितं कणमर्वनं सत् ।

द्वीशाजपाक्षित्रऋतिधातूशतार्यमर्थो

सस्यस्य रोपणमिहाकिकुजौ विना सत् ॥ ३२ ॥

पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, श्रवण, ज्येष्ठा, रोहिणी, मूल, अनुराधा तथा रेवती नक्षत्रों में कणमर्दन (कड़ाई, बँवरी) शुभ होता है। विशाखा, पूर्वाभाद्रपदा, मूल, रोहिणी, शतभिष और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रों में शनि और मङ्गल वासरों को छोड़कर शेष सभी दिवसों में सस्यरोपण (धान आदि के पौधों की रोपाई) शुभ होती है।

धान्य स्थापन मुहूर्तः -

मिश्रोग्ररौद्रभुजगेन्द्र विभिन्नभेषु

कर्कावतौलिरहिते व तनौ शुभाहे ।

धान्यस्थितिः शुभकरी गविता, ध्रुवेज्य-

द्वीवोन्द्रवनचरभेषु च धान्यवृद्धिः ॥ ३३ ॥

मिश्रसंज्ञक (विशाखा, कृत्तिका), उग्रसंज्ञक (तीनों पूर्वा, भरणी, मघा) आर्द्रा, आश्लेषा और ज्येष्ठा नक्षत्रों को छोड़कर शेष सभी नक्षत्रों में कर्क, मेष और तुला लग्नों को छोड़कर शेष सभी लग्नों में तथा शुभ दिवसों में अन्नस्थापन (बखार कोठिला आदि में अन्न को रखना) शुभकारक कहा गया है।

ध्रुव संज्ञक (तीनों उत्तरा, रोहिणी) पुष्य, विशाखा, ज्येष्ठा, आश्विनी एवं चर संज्ञक (स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा) नक्षत्रों में अन्न का व्यवहार (लेना या देना) वृद्धिकारक होता है।

शान्ति-मङ्गल-पौष्टिक-कर्ममुहूर्त्तः-

क्षिप्रध्रुवान्त्यचर मैत्रमघासु शस्तं

स्याच्छान्तिकं च सह मङ्गलपौष्टिकाभ्याम् ।

खेऽर्के विधौ सुखगते तनुगे गुरौ नो

मौढ्यादिदुष्टसमये शुभदं निमित्ते ॥ ३४ ॥

हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित, तीनो उत्तरा, रोहिणी, रेवती, स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, अनुराधा, मघा नक्षत्रों में लग्न से दशम भाव में सूर्य, चतुर्थ भाव में चन्द्रमा तथा लग्न में गुरु के रहने पर यह शान्ति (या अन्य शान्तिकर्म), मङ्गल एवं पौष्टिक कर्म शुभ होते हैं। गुरु और शुक्र के बाल-वृद्ध और अस्तंगत होने पर उक्त कार्य नहीं करना चाहिए। परन्तु अशुभ शकुनों की शान्ति के लिए (किसी भी समय) शान्ति कर्म करना शुभप्रद होता है।

होमाहुति मूहूर्तः--

सूर्यभात् त्रित्रिभे चान्द्रे सूर्यविच्छुक्रपङ्गवः ।

चन्द्रारेज्यागुशिखिनो नेष्टा होमाहुतिः खले ॥ ३५ ॥

सूर्य नक्षत्र से वर्तमान चन्द्र नक्षत्र पर्यन्त, तीन-तीन नक्षत्रों में क्रम से सूर्य, बुध, शुक्र, शनि, चन्द्र, मंगल, गुरु, राहु और केतु के मुख में आहुति पड़ती है। खलग्रहों (पापग्रहों) के मुख में पड़ी आहुति अशुभ होती है।

विमर्शः- हवन का शुभ एवं अभीष्ट फल प्राप्त करने के लिए हवन का मुहूर्त आवश्यक है। हवन में दी हुई आहुति अग्नि देव द्वारा अभीष्ट एवं सम्बन्धित देव तक पहुँचती है। अग्नि देव का वास भिन्न-भिन्न समय में भिन्न-भिन्न ग्रहों के मुख में होता है। यदि शुभग्रहों के मुख में अग्नि वास हो तो हवन का शुभ फल तथा अग्नि वास पाप ग्रहों के मुख में हो तो अशुभ फल होता है।

नक्षत्र संख्या	३	३	३	३	३	३	३	३	३

ग्रह	सूर्य	बुध	शुक्र	शनि	चन्द्र	भौम	गुरु	राहु	केतु
हवन फल	अशुभ	शुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	अशुभ

उदाहरण - कृत्तिका नक्षत्र में हवन करना है। सूर्य विशाखा पर है। अतः सूर्याधिष्ठित नक्षत्र से वर्तमान नक्षत्र पर्यन्न संख्या १५ हुई। तीन-तीन नक्षत्रों के क्रम से पाँचवें ग्रह चन्द्रमा के मुख में अग्नि वास है अतः कृत्तिका में हवन शुभ कारक होगा ।

हवन में अग्निवासविचारः--

सैका तिथिर्वारयुता कृताप्ता शेषे गुणेऽभे भुवि वह्निवासः ।

सौख्याय होमे शशियुग्मशेषे प्राणार्थनाशौ दिवि भूतले च ॥ ३६ ॥

वर्तमान तिथि में एक जोड़कर रविवार से वर्तमान दिवस की संख्या भी जोड़कर योगफल में चार से भाग देने पर शेष यदि ३ और शून्य बचे तो अग्नि का वास भूमि पर होता है। उस दिन हवन करने से (शुभ) सुख वृद्धि होती है। एक शेष रहने पर अग्नि वास स्वर्ग में होना है (अतः पृथ्वी पर) हवन करने से प्राणनाश, दो शेष रहने पर अग्नि करा का वास पाताल में होता है। इस समय हवन करने से धननाश होता है ॥३६॥

उदाहरण--सं. २०४० कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा रविवार को हवन हेतु अग्निवास देखना है।

तिथि संख्या १५+१=१६ वार संख्या- ४) १७ (४ १६ १

शेष १६-१-१७ योगफल शेष एक रहने से अग्नि वास पाताल में। अतः हवन के लिए अशुभ है।

नवान्न भक्षण मुहूर्तः-

नवान्नं स्याच्चरक्षिप्रमृटु मे सत्तनौ शुभम् ।

विना नन्दा-विषघटी-मधु-पौषाऽकि-भूमिजान् ॥ ३७ ॥

चर, क्षिप्र, मृदु संज्ञक (स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी, पुष्य) नक्षत्रों में, शुभ लग्नों में नन्दा (१,६,११) तिथियों को छोड़कर शेष तिथियों में चैत्र-

पौषमासों को छोड़कर शेष मासों में एवं शनि और मंगलवार को छोड़कर शेष सभी दिवसों में नये अन्न का भक्षण (नेवान) शुभ होता है।

रोग मुक्ति स्नान मुहूर्तः--

व्यन्त्यादितिध्रुवमघाऽनिलसार्पधिष्ण्ये

रिक्ते तिथौ चरतनौ विकवीन्दुवारे ।

स्नानं रुजा विरहितस्य जनस्य शस्तं

हीने विधौ खलखगैर्भबकेन्द्रकोणे ॥ ४० ॥

रेवती, पुनर्वसु, तीनो उत्तरा, रोहिणी, मघा, स्वाती, आश्लेषा इन नक्षत्रों को छोड़कर शेष सभी १८ नक्षत्रों में रिक्ता (४,६,१४) तिथियों में चर लग्नों में शुक्र और सोमवार को छोड़कर शेष वासरों में चन्द्रमा के निर्बल रहने पर तथा पाप ग्रहों के ग्यारहवें केन्द्र (१,४,७,१०) एवं कोण (५,६) भावों में स्थित रहने पर रोग से मुक्त व्यक्ति को स्नान कराना शुभ होता है ॥ ४० ॥

शिल्प विद्या मुहूर्त्तः-

मृदु-ध्रुव-क्षिप्र-चरे ज्ञे गुरौ वा खलग्नगे ।

विधौ ज्ञजीववर्गस्थे शिल्पविद्या प्रशस्यते ॥ ४१ ॥

हिन्दी-मृदु-ध्रुव-क्षित्र एवं चर संज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, तीनों उत्तरा, रोहिणी, हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित, स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, एवं शतभिषा नक्षत्रों में बुध या वृहस्पति के दशम या लग्न में स्थित रहने पर तथा चन्द्रमा के बुध या गुरु के पड्वर्ग में स्थित रहने पर शिल्प-विद्या (मूर्तिकला, गृह-देवालयादि के निर्माण सम्बन्धी विद्या) का अध्ययन आरम्भ करना शुभ होता है ॥ ४१ ॥

सामान्य शुभकार्यों में लग्नशुद्धिः--

व्ययाष्टशुद्धोपचये लग्नगे शुभदृग्युते ।

चन्द्रे त्रिषड्दृशायस्थे सर्वारम्भः प्रसिद्धयति ॥ ४४ ॥

अपनी जन्म राशि या जन्म लग्न से उपचय भाव गत (३,६, १०, ११) राशियों में लग्न हो; लग्न से द्वादश और अष्टम भाव शुद्ध (ग्रह रहित) हों, लग्न पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो, चन्द्रमा ३, ६, १०, ११ भावों में स्थित हों तो सभी प्रकार के कार्यों का आरम्भ करना सिद्धिदायक होता है।

अभुक्त मूल -

अभुक्तमूलं घटिकाचतुष्टयं ज्येष्ठान्त्यमूलादिभवं हि नारदः ।

वसिष्ठ एकद्विघटीमितं जगौ बृहस्पतिस्त्वेकघटीप्रमाणकम् ॥ ५३ ॥

ज्येष्ठा की अन्तिम दो घटी एवं मूल की आदि की दो घटी कुल चार घटी तुल्य काल अभुक्त मूल का प्रमाण नारद ने बतलाया है। वसिष्ठ ने ज्येष्ठा की अन्तिम एक घटी मून के आरम्भ की दो घटी कुल ३ घटी तुल्य काल, तथा बृहस्पति ने ज्येष्ठा की अन्तिम आधी घटी तथा मूल की आसन की आधी घटी कुल एक घटी तुल्य काल अभुक्त मूल बतलाता है।

पाद भेद से फल –

श्राद्ये पिता नाशमुपैति मूलपादे द्वितीये जननी तृतीये।

धनं चतुर्थोऽस्य शुभोऽथ शान्त्या सर्वत्र सत्स्यादहिभे विलोमम् ॥५५॥

मूल नक्षत्र के प्रथम चरण में उत्पन्न होने वाले शिशु के पिता का नाश, द्वितीय चरण में माता का नाश तथा तृतीय चरण में धन का नाश होता है। चतुर्थ चरण में जन्म हो तो शुभ होता है। मूल की शान्ति करने से सभी चरणों में कहे गए दोषों की शान्ति हो जाती है तथा सभी शुभ हो जाते हैं।

आश्लेषा नक्षत्र का फल मूल नक्षत्र से विपरित होता है। अर्थात् आश्लेषा के चतुर्थ चरण में जन्म हो तो पिता का नाश, तृतीय चरण में जन्म हो तो माता का नाश द्वितीय में जन्म हो तो धन का नाश तथा प्रथम चरण में जन्म हो तो शुभ होता है।

अभुक्त मूल के अतिरिक्त आश्लेषा नक्षत्र का गण्डमूल की दृष्टि से विशेष महत्व है। अतः मूल और आश्लेषा नक्षत्रों के सम्बन्ध में विशेष विचार किया गया है। मूल नक्षत्रोत्पक्ष शिशु के दोष परिहारार्थ बलिष्ठ का मत ग्रन्थकार ने अपनी टीका में उद्धृत किया है-

"मूलाद्यपादो यदिरात्रि भागे तदात्मना नास्ति पितुर्विनाशम् ।

द्वितीयपादो दिनगो यदि स्यान्न मातुरल्पोऽपि तदास्ति दोषः ॥"

यदि मूल नक्षत्र का प्रथम चरण रात्रि में पड़े तथा उसी में शिशु का जन्म हो तो उसके पिता का विनाश नहीं होता। इसी प्रकार मूल नक्षत्र का द्वितीय चरण यदि दिन में हो तो उसमें उत्पन्न शिशु के माता को स्वल्प दोप भी नहीं होता ।परन्तु नारद ने गण्डमूल को निरापद नहीं माना है।

"दिवाजातस्तु पितरं रात्री तु जननीं तथा ।

आत्मानं सन्ध्ययोर्हन्ति नास्ति गण्डो निरामयः ॥"

अर्थात् दिन में गण्डमूल में उत्पन्न शिशु के पिता का नाश, रात्रि में माता का नाश, तथा सन्ध्या काल में स्वयं शिशु का विनाश होता है। अतः गण्डमूल सदैव दोषकारक ही होता है।

नारद के अनुसार गण्डमूल वाले (ज्येष्ठा, मूल, आर्द्रा, मघा, अश्विनी एवं रेवती) नक्षत्रों में उत्पन्न शिशु की मूल शान्ति अवश्य करा देनी चाहिए ।

जलाशयारामसुरप्रतिष्ठा-मुहूर्तः--

जलाशयारामसुरप्रतिष्ठा सौम्यायने जीवशशाङ्कशुभे ।

दृश्ये, मृदुक्षिप्रचरध्रुवे स्यात्पक्षे सिते स्वर्क्षतिथिक्षणे वा ॥ ६१ ॥

रिक्तारवथै दिवसेऽतिशस्ता शशाङ्कपापैस्त्रिभवाङ्गसंस्थैः ।

व्यन्त्याष्टगैः सत्खचरैर्मृगेन्द्रे सूर्यो घटे को युवतौ च विष्णोः ॥ ६२ ॥

शिवो नृयुग्मे द्वितनौ च देव्यः क्षुद्राश्चरे सर्व इमे स्थिरक्षे ।

पुष्ये ग्रहा विघ्नपयक्षसर्पभूतादयोऽन्त्ये श्रवणे जिनश्च ॥ ६३ ॥

जलाशय (वापी, कूप, तालाब) का निर्माण, बाग, उपवन, आदि का निर्माण एवं देवालय में देवताओं की प्रतिमाओं की प्राणप्रतिष्ठा सूर्य के उत्तरायण (मकर से मिथुन पर्यन्त) रहने पर, गुरु-चन्द्रमा और शुक्र के उदित रहने पर, मृदु, क्षिप्र, चर एवं ध्रुब संज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित्, स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष, तीनों उत्तरा तथा रोहिणी नक्षत्रों में, शुक्ल पक्ष में, अपने नक्षत्रों, तिथियों एवं मुहूर्त्तों में (जिस नक्षत्र या तिथि का स्वामी जो देवता हो उसकी स्थापना उस तिथि और नक्षत्र में), रिक्ता (४,६,१४) तिथियों एवं मंगलवार को छोड़कर शेष तिथि वासरों में,

चन्द्रमा और पाप ग्रहों के तृतीय, ग्यारह एवं छठें भावों में स्थित रहने पर, तथा द्वादश अष्टम भावों को छोड़कर शेष भावों में शुभग्रहों के रहने पर अत्यन्त शुभ होती है।

सिंह लग्न में सूर्य की, कुम्भ में ब्रह्मा की, कन्या में विष्णु की, मिथुन में शिव की, द्विःस्वभाव (३,६,९,१२) लग्नों में देवी की, क्षुद्र (लघु देवी देवताओं चौंसठ योगिनी, १६ मातृका आदि) देवताओं की चर (१,४,७,१०) लग्नों में, तथा अन्य सभी देवी देवताओं की स्थिर (२,५,८,११) लग्नों में प्रतिष्ठा करनी चाहिए। ग्रहों की स्थापना पुष्य नक्षत्र में, गणेश, यक्ष, सर्प, भूत आदि गणों की स्थापना रेवती नक्षत्र में तथा बौद्ध और जैन प्रतिमाओं की स्थापना श्रवण नक्षत्र में करनी चाहिए।

इकाईः5, दशदान एवं दश दानों का महत्त्व

दश दान में गोदान, भूमिदान, तिलदान, सुवर्ण दान, आज्य दान, वस्त्र दान, धान्यदान, गुड दान, रौप्स दान, लवण दान, का अपना – अपना महत्त्व है। मानव जीवन में उपरोक्त वस्तु जीवन में जितना महत्त्व रखता है उससे कई गुना महत्त्व दान का बताया गया है। मानव जीवन में सुख शान्ति चाहता है परन्तु सुख शान्ति के साधन को वह उपभोग नहीं कर पाता जिसके लिए उपरोक्त दान का महत्त्व निम्नलिखित दान के साथ बताया गया है ऐसा करने से सुख समद्धि की प्राप्ति होती है।

स्वः स्वाहा । इदं प्रजापतये न मम । ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा । इदमग्नये स्विष्टकृते न० । ततो भूराद्या नवाहुतयः । (संकल्पः। भूः स्वाहा । इदमग्नये न मम।। भुवः स्वाहा। इदं वायवं न मम सिद्धयर्थं।।

5.1 गोवृषनिष्क्रयदान

गोभूतिलहिरण्याज्यवासोधान्यगुडानि च ।

रौप्यं लवणमित्याहुर्दशदाना (नि पण्डिताः) न्यनुक्रमात् ॥

आचम्य प्राणानायम्य देशकालौ सङ्कीर्त्य मया आचरित- प्रायश्चित्तस्य साद्गुण्यकामः सुखेन पुण्यलोकप्राप्तिकामो महाविष्णु- प्रीतिकामो वा गवादिदशदानान्यहं करिष्ये । इति सङ्कल्प्य ततो गोदानम्, तच्चादि-(पूर्वं १०३ पत्रे) गोदानवत् ।

गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश ।

यस्मात्तस्माच्छिवं मे स्यादिहलोके परत्र च ॥

द्वात्रिंशत्पाणिका गावः ॥[17]

5.2 - भूमिदान

अमुकप्रवरम् अमुकशाखाध्यायिनम् अमुकशर्माणं ब्राह्मणं भूमिदानप्रतिगृहीतारं त्वामहं वृणे । इति विप्रवरणम् । भूमिदानपात्रभूत ब्राह्मण एष ते पाद्यम्, एष ते अर्घः, पादप्रक्षालनम्, एष ते गन्धः, एतत्ते पुष्पम्, स्वकीयपादौ प्रक्षाल्याचम्य गन्धमाल्यादिभिरर्चनम्, सकुशयवतिलजलदानम्, देशकालसङ्कीर्तनान्ते-

[17] गोनिष्क्रयस्तु – ''द्वात्रिंशत्पाणिका गाव'' इति (५५ पत्रे) कात्यायनेन मूल्यपरिशिष्टेऽ–प्युक्तंत्ताम्रमानेन वराटकमानेनाथवा रौप्यरजतसुवर्णमानेन दातव्यम् ।

5.3 - **तिलदान**

इत्युक्त्वा अमुकसगोत्रयेत्यादि अमुककाम इत्यन्तं पूर्वदुच्चार्य द्रोणत्रयपरिमितानेतांस्तिलान् प्रजापतिदैवत्यां तुभ्यमहं सम्प्रददे । ब्राह्मणहस्ते जलाद्यन्वितमुष्टिमात्रतिलदानम् । "ॐ देवस्य त्वे "ति मन्त्रान्ते "प्रजापतये" इति तान् "प्रतिगृह्णामी" त्युक्त्वा प्रतिग्रहणम् । "कोऽदादि" त्यादि "ॐ स्वस्ती" त्यन्तं मन्त्रपठनं च ।

तत्र विप्रवरणादिदेशकालोच्चारणान्वितेषु वक्ष्यमाणेषु ज्ञेयम् ।

महर्षेर्गोत्रसम्भूताः काश्यपस्य तिलाः स्मृताः ॥

तस्मादेषां प्रदानेन मम पापं व्यपोहतु" ॥

5.4 - **हिरण्यदान**

हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः ।

अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

इत्युक्त्वा अमुकसगोत्रायेत्यादि अमुककाम इत्यन्तं पूर्ववदुच्चार्य निष्कपरि- मितमिदं सुवर्णमग्निदैवतं तुभ्यमहं सम्प्रददे । ब्राह्मणहस्ते जलादियुक्तसुवर्ण दानम् । "ॐ देवस्य त्वेति" अग्नय इदं सुवर्णं प्रतिगृह्णामि "कोऽदादि "ति । ("निष्कं सुवर्णाश्चत्वार" इति निष्करूपम् ।)

5.5 –**आज्यदान-**

कामधेनोः समुद्भूतं सर्वक्रतुषु संस्थितम् ।

देवानामाज्यमाहारमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

अमुकगोत्रायेत्यादि प्रस्थाधिकाढकपरिमितमिदमाज्यं सोमदैवतं तुभ्यमहं सम्प्रददे । इति जलान्विताज्यपात्रस्य विप्रहस्ते दानम्, "देवस्य त्वे"ति सोमायाज्यं प्रतिगृह्णामि स्वस्तीति पूर्ववत् ।

5.6- **वस्त्रदान**

शीतवातोष्णसन्त्राणं लज्जानिर्हरणं परम् । (लज्जाया रक्षणं परम्) ॥ देहालङ्करणं वस्त्रमतः शान्ति प्रयच्छ मे ॥

अमुकगोत्रायेत्यादि इमे सूक्ष्मे । वाससी बृहस्पतिदैवते तुभ्यमहं सम्प्रददे । कुशजलान्चिताया वस्त्रदशाया विप्रहस्ते दानम् । "ॐ देवस्य त्वेति" बृहस्पतये वाससी प्रतिगृह्णामि "कोऽदादिति स्वस्ती" त्यन्तं पूर्ववत् ।

5.7 – **धान्य दान**

सर्वदेवमयं धान्यं सर्वोत्पत्तिकरं महत् ।

प्राणिनां जीवनं यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

अमुकसगो० सार्द्धखारीपरिमितमिदं । धान्यं विश्वेदेवा दैवतं तुभ्यमहं सम्प्र ददे । कुशजलान्वितमुष्टिमात्रधान्यस्य ब्राह्मणहस्ते दानम् । "ॐदेवस्य त्वे"ति विश्वेभ्यो देवेभ्य इदं धान्यं प्रतिगृह्णामि "ॐ कोऽदादि" त्यादि "स्वस्तीत्यन्तम् ।

5.8 - **गुडदान**

"यथा देवेषु विश्वात्मा प्रवरश्च जनार्दनः ।

सामवेदस्तु वेदानां महादेवस्तु योगिनाम् ॥

प्रणवः सर्वमन्त्राणां नारीणां पार्वती यथा ।

तथा रसानां प्रवरः सदैवेक्षुरसोत्तमः ॥

मम तस्मात् परां लक्ष्मीं ददस्व गुड सर्वदा" । ॥

अमुकसगोत्रषष्टिपलपरिमितमिमं गुडं तुभ्यमहं सम्प्रददे । ब्राह्मणहस्ते सजल- गुडदानम् । "ॐदेवस्य त्वे"ति सोमायेमं गुडं प्रतिगृह्णामि "ॐ स्वस्ती" त्यन्तं पूर्ववत् ।

1.9 **रौप्यदान**

"प्रीतिर्यतः पित्तृणां च विष्णुशङ्करयोस्सदा ।

शिवनेत्रोद्भवं रूप्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे" ॥

अमुकसगोत्र. निष्कत्रयपरिमितमिदं रूप्यं रुद्रदैवत्यं तु. । ब्राह्मणहस्ते जलान्वितरौप्यदानम् । "ॐ देवस्य त्वे"ति रुद्राय रौप्यं प्रतिगृह्णामि "ॐ स्वस्ती"ति पूर्ववत् ।

1.10 - **लवणदान**

यस्मादन्नरसा सर्वे नोत्कृष्टा लवणं विना ।

शम्भोः प्रीतिकरं नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

अमुकसगो. सार्द्धखारीपरिमितमिदं लवणं सोमदैवतं तुभ्य. । ब्राह्मणस्ते । ''ॐ देवस्य त्वे'' ति.। सोमायेदं लवणं प्रतिगृह्णामि जलोदेर्हस्ते ग्रहम्। ''ॐकोऽदादि''ति स्वस्तीत्यन्तं पूर्ववत्।

इकाईः 6, यम नियम धर्म

यम और नियम – महर्षि पतंजलि ने 'पातंजल योग-दर्शन' 'अथ योगानुशासनम्' शब्द से प्रारम्भ किया है, जिससे स्पष्ट होता है कि उन्होंने जीवन के आदर्शों में अनुशासन को कितना महत्व दिया है।

यदि जीवन अनुशासित न हो, तो फिर योग का भवन किस आधारशिला पर स्थापित होगा? पतंजलि योग का विकास आठ क्रमों में होता है, इसलिए इसे 'अष्टांग योग' भी कहते हैं। उन्होंने क्रमिक विकास का एक वैज्ञानिक स्वरूप हमारे सामने उपस्थित किया है। यदि कोई व्यक्ति योग के अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त करना चाहता है, तो उसे क्रम से उनको अपने जीवन में आत्मसात् आवश्यक है।

योग के क्रमिक विकास में यम और नियम प्रथम द्वार हैं। बिना उनमें प्रवेश किये हुए किसी भी व्यक्ति की प्रगति योग में नहीं हो सकती। यम और नियम जीवन में समन्वय और अनुशासन पैदा करते हैं।

6.1 - यम

पतंजलि के अनुसार पाँच यम:

"अहिंसासत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ॥" (योग० २-३०)

१. अहिंसा, २. सत्य, ३. अस्तेय ४. ब्रह्मचर्य और ५. अपरिग्रह - ये पांच यम हैं।

१. अहिंसा - अहिंसा केवल जीवों की हत्या न करना ही नहीं है, अपितु मन, वाणी और शरीर से किसी प्राणी को कभी किसी प्रकार किंचित् मात्र भी दुःख न देना 'हिंसा' है। परदोष- दर्शन का सर्वथा त्याग भी इसी के अन्तर्गत है।

परन्तु अहिंसा का अर्थ संकीर्ण रूप में लेना उचित नहीं है। समाज के विशेष हित में कभी जीव हत्या या प्रताड़ना भी कर्तव्य हो जाता है। यदि यह न हो, तो संसार में दुष्टों, दस्युओं, आततायियों का बोलबाला हो, सज्जन और धर्मप्राण व्यक्तियों को कहीं छिपने की जगह न रहे। ऐसी स्थिति में हमें अहिंसा का अर्थ विशाल दृष्टि से लेना होगा ।यदि कोई नृशंस और दुष्ट व्यक्ति किसी निरीह बालिका के साथ बलात्कार करे, तो क्या उस समय यह कर्तव्य होगा कि उसको यह कहा जाय कि तू दूसरी बार बलात्कार कर ले ? उस समय तो यह कर्तव्य होगा कि यदि किसी तरह उस निरीह बालिका की रक्षा न हो सके; तो उस दुष्ट को मार देना चाहिए। उस समय उस दुष्ट को मारना भी अहिंसा ही होगी ।

२. सत्य - इन्द्रिय और मन से प्रत्यक्ष देखकर, सुनकर

या अनुमान करके जैसा अनुभव हो, ठीक ऐसा ही भाव प्रकट करने के लिए जो शब्द बोले जाते हैं, उसका नाम 'सत्य' है। परन्तु यहां यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि वह वचन प्रिय, हितकारी और अनुद्वेगकर हो । यदि कोई हत्यारा तलवार लेकर किसी निर्दोष व्यक्ति या जीव को मारने के उद्देश्य से जाता हो और वह पूछे कि वह निर्दोष व्यक्ति किधर गया, तो उस समय चुप रहना ही अभीष्ट है। परन्तु दया के नाम पर दोषियों और अनाचारियों को संरक्षण देना अथवा उन्हें बचाना अहिंसा और सत्य नहीं है। इसलिए अहिंसा और सत्य का मार्ग बहुत गहन है। उसे केवल शाब्दिक रूप में नहीं लेना चाहिए, किन्तु यह देखना चाहिए कि सामाजिक दृष्टि से उसमें अपना क्या कर्तव्य है।

३. अस्तेय - चोरी केवल स्थूल रूप से दूसरे की वस्तु लेना ही नहीं है, अपितु दूसरे के स्वत्त्व का अपहरण करना, दूसरे के श्रेय का शोषण करना अथवा समाज के लिए नियमानुसार जो देय है, उसे न देना भी चोरी ही है। जैसे, टैक्स आदि की चोरी करना, कम तोलना, असली चीज के बदले में नकली या निकृष्ट चीज देना या मिलावट करना आदि इन सब प्रकार की चोरियों के अभाव का नाम 'अस्तेय' है।

४. ब्रह्मचर्य- मन, वाणी और शरीर से वीर्य की रक्षा करना 'ब्रह्मचर्य'। इसके लिए आवश्यक है कि प्राणी न तो ऐसा साहित्य पढ़े या ऐसा दृश्य, सिनेमा आदि देखें और न ऐसा भाषण सुने, जिससे विचारों में उत्तेजना और काम-प्रसंग की इच्छा उत्पन्न हो । परन्तु इसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि प्राणी विवाहित जीवन के लिए गृहस्थाश्रम में प्रवेश न करे । प्राणी गृहस्थाश्रम में भी संयमित और सन्तुलित जीवन व्यतीत कर स्त्री-प्रसंग को नियमन करके ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर सकता है।

५. अपरिग्रह- अपने स्वार्थ के लिए समतापूर्वक किसी भी साधन से सम्पत्ति अथवा भोग-सामग्री का संचय परिग्रह है। इसके अभाव का नाम 'अपरिग्रह' है। परन्तु यदि कोई संचय शुद्ध साधनों से और समाज के हित में किया गया है, तो वह भी अपरिग्रह में ही आ जाता है। जैसे, किसी व्यापारी के लिए सम्पत्ति का संग्रह आवश्यक हो सकता है, जिसके बिना वह अपना व्यापार चला ही नहीं सकता। यदि समाज के हित में व्यापार किसी रूप में आवश्यक हो, तो फिर उसे सामाजिक नियमों में उसके साधन के लिए पूंजी संग्रह करने का विधान भी होना चाहिए। पर वह शुद्ध और सही साधनों से ही होना चाहिए और उसका उपयोग भी समाज के हित में ही होना चाहिए । यदि कोई यह समझे कि इस सम्पत्ति का

मैं ही स्वामी हूं और मैं ही उसे अपने अपरिमित भोग-विलास में व्यय कर सकता हूं, तो वह अपरिग्रह में नहीं आ सकता। गांधीजी के ट्रस्टीशिप का यही अभिप्राय है ।

5.2 - **नियम**

नियम पाँच हैं - यथा

१. शौच, २. सन्तोष, ३. तप, ४. स्वाध्याय और ५. ईश्वर-प्रणिधान ।

१. शौच - शरीर, वस्त्र और मकान आदि के मल को दूर करना बाहर की शुद्धि है। कुछ लोग अपने शरीर, वस्त्र और मकान की बाहरी तड़क-भड़क की चिन्ता तो करते हैं, परन्तु अपने आस-पास के वातावरण की सफाई और शुद्धि रखने की ओर उनका कोई ध्यान नहीं जाता है। गली, मोहल्ले और दूसरे वातावरण, जिसमें वह रहता है और प्रतिदिन जिनके सम्पर्क में आता है, वे गन्दे रहें तो फिर उनका प्रभाव व्यक्तिगत सफाई पर भी पड़ता है। साथ ही बाहर की शुद्धि और पवित्रता के साथ ही भीतरी शुद्धि भी आवश्यक है। जैसे; शुद्ध और पवित्र वायु का श्वास-प्रश्वास के साथ भीतर जाना, शुद्ध, ताजा और निरामिष भोजन करना, गन्दे, बासी और उत्तेजक पदार्थों का भोजन न करना और अन्तःकरण में पवित्र तथा राग-द्वेष रहित विचारों का ही उठना - आन्तरिक स्वच्छता है। योगी के लिए बाहरी स्वच्छता और पवित्रता की जितनी आवश्यकता होती है, उससे कहीं अधिक आन्तरिक स्वच्छता और पवित्रता की आवश्यकता होती है। आजकल तड़क-भड़कदार कपड़े, नये-नये ढंग के मकान आदि बनवाने की ओर तो हमारा बहुत ध्यान जाता है, परन्तु बिना आन्तरिक स्वच्छता के यह सब व्यर्थ है ।

२. सन्तोष - अपने कर्त्तव्य-कर्म और लक्ष्य को पूर्ण शक्ति से प्राप्त करने का प्रयत्न करते हुए भी परिस्थितियों के अनुसार जो कुछ भी प्राप्त हो जाय, उसमें ही सुख का अनुभव करना 'सन्तोष' है। इसका यह अर्थ नहीं है कि वह जीवन में उपलब्धियां प्राप्त करने का प्रयत्न ही न करे- यह तो अकर्मण्यता है। जो प्राप्त हो जाय, उसी में सुख का अनुभव कर सन्तुष्ट रहे, यही इसका तात्पर्य है ।

३. तप- अपने सिद्धांत, देश, समाज और धर्म के प्रति जो भी मानसिक, शारीरिक या आर्थिक कष्ट हो, उसको सहन करते हुए उसे करते रहना ही 'तप' है। व्रत-उपवास आदि भी इसी में आ जाते हैं। निष्काम भाव से इस तप का पालन करने से अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। शरीर को अनावश्यक कष्ट देना तप नहीं है।

४. स्वाध्याय- हम जो भी पढ़ते हैं और विचार करते हैं, उसका हमारे जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। हमारा ज्ञान ज्यों-ज्यों विस्तीर्ण होता जाता है, त्यों-त्यों हमारे कार्य-क्षेत्र का भी विकास तथा विस्तार होता जाता है। इसलिए अधिकतर अच्छी पुस्तकें और धर्मशास्त्र पढ़ने से जीवन सुसंस्कृत होता है और योग में सहायक होता है। गन्दे और कामोत्तेजक तथा विवेकहीन साहित्य से सदा बचना चाहिए । घर में अच्छी पुस्तकों का संग्रह करना चाहिए। इससे परिवार के उत्थान में बहुत लाभ होता है ।

प्रतिदिन का कार्यक्रम बनाते समय कुछ समय स्वाध्याय के लिए भी अवश्य रखना चाहिए। प्रातःकाल या सोते समय सुविधापूर्वक अध्ययन किया जा सकता है। नियमित रूप से थोड़ा-थोड़ा अच्छा साहित्य पढ़ने पर भी मनुष्य अपने ज्ञान की वृद्धि कर सकता है। यदि वह एक दिन में आधा घंटा प्रतिदिन स्वाध्याय करे और चार पृष्ठ भी पढ़े, तो वर्ष में चौदह सौ चालीस के लगभग पृष्ठ पढ़ सकता है। एकाग्र चित्त अध्ययन करने से बहुत कुछ प्राप्त हो सकता है। पढ़ते समय इस बात का भी स्मरण करना चाहिए कि उन्होंने कल क्या पढ़ा। जो कुछ भी पढ़ें, उसे जीवन के व्यवहार में लावें, क्योंकि तोते की तरह रटते रहने से कोई लाभ नहीं है।

५. ईश्वरप्रणिधान - अपने को ईश्वर में समर्पित कर देने का नाम ही 'ईश्वरप्रणिधान' है। अपने सब कर्मों को ईश्वर की प्रेरणा समझकर करना और फिर उसके फल को ईश्वर को ही अर्पित कर देना - ईश्वर-भक्ति है। यह कार्य करने की एक विशेष पद्धति है, जिससे हमें एक विशेष बल प्राप्त होता है। उसमें फलाशा की चिन्ता किये बिना ही दृढ़ता से एक अच्छे कार्य को करने की प्रेरणा मिलती है। ईश्वर अच्छे कार्य का फल अच्छा ही देता है। इसमें विश्वास रखने से हम फल की चिन्ता से मुक्त हो सकते हैं। यदि कुछ कठिनाइयां भी आती हैं तो भी यह समझकर कि, इसमें भी ईश्वर ने हमारा कुछ भला ही सोचा है, हम उस सच्चाई के मार्ग से डगमगाते नहीं । फल की चिन्ता करते रहने से हमारी कार्य-क्षमता में जो निर्बलता आती है; उसे ईश्वर पर छोड़ देने से वैसी निर्बलता नहीं आती । किसी भी परिस्थिति में कार्य करना पड़े, उसमें हमें सुख का ही अनुभव होता है। ईश्वर की प्रेरणा से हम अपने पथ पर दृढ़ता से आगे बढ़ते जाते हैं तथा कर्तव्य करते समय हम अनेक गलत रास्तों में जाने से बच जाते हैं। निःसन्देह हमारा अन्तःकरण उस समय हमें सन्मार्ग का निर्देश करने में सहायक होता है। श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है :

"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्व भूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥" (१८-६१)

"तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।

तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसिशाश्वतम् ॥"

(गीता १८-६२)

"हे अर्जुन ! शरीर रूपी यन्त्र में आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियों को अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी माया से उनके कर्मों के अनुसार घूमता हुआ, सब भूत प्राणियों के हृदय रूप गहन गुहा में स्थित है। अतएव तू भी सब प्रकार से उस परमेश्वर की ही शरण को प्राप्त हो, उस परमात्मा की कृपा से ही परम शान्ति को और सनातन परम धाम को प्राप्त होगा ।"

इस पर प्रश्न उठता है कि ईश्वर किसी को कुछ नहीं देता, हम जैसा करते हैं वैसा ही हमें फल मिलता है। तो फिर ईश्वर पर अवलम्बित होने से क्या लाभ ? यह सही है कि हमारे कर्म यदि अच्छे नहीं होंगे, तो ईश्वर हमें अच्छे फल नहीं देगा, परन्तु ईश्वर पर विश्वास करने से कर्म करने का हमारा मार्ग अवरुद्ध नहीं हो जाता, किन्तु ईश्वर अर्पित सेवा में हमें अच्छे कर्मों के करने के लिए अन्तःकरण से प्रेरणा मिलती रहती है।

जो योग में सफलता चाहते हैं, उन्हें अपने जीवन में संतुलन और समन्वय लाना नितान्त आवश्यक है। उन्हें जीवन को एक निश्चित दिशा में ढालना आवश्यक होता है। पांच यम और पांच नियम एक ऐसी आधारशिला हैं, जिनके द्वारा मनुष्य अपने जीवन को स्थापित करके योग में प्रगति कर सकता है। ऐसा न करके केवल कुछ क्रियामात्र से कोई बहुत लाभ नहीं हो सकता । जीवन को जबतक पवित्र नहीं बनाया जायगा, तबतक आत्मशुद्धि नहीं होगी और इस दिशा में हम कोई प्रगति भी नहीं कर सकते । यम और नियम आत्मशुद्धि के कुछ आधारभूत सिद्धांत हैं। परन्तु यह आवश्यक नहीं कि इन पर पूर्णता प्राप्त करने पर ही मनुष्य अष्टांग योग के आगे के अंगों में कदम उठाये। यम-नियम के आगे जो साधन बताये गए हैं, वे भी यम और नियम के साथ –साथ चल सकते हैं। वास्तव में ये एक-दूसरे के सहायक तथा पूरक हैं। हमारा कहने का तात्पर्य यह है कि हम यह स्वीकार नहीं करते कि आप चाहे जैसा जीवन बिताएं, केवल दस-पांच मिनट का ईश्वर का ध्यान करने से ही आप अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं या कोई तंत्र योग अथवा हठयोग की क्रियामात्र से आपको योग की उपलब्धि हो सकती है।

6.3- दश धर्म लक्षण

चतुर्भिरपि चैषै तैर्नित्यमाश्रमिमिर्द्विजैः ।

दशलक्षणको धर्मः सेवितव्यः प्रयत्नतः ॥ ९१ ॥

इन चारों आश्रमोंमें रहनेवाले द्विजोंको दस प्रकारके (६।९२) धर्मका यत्नपूर्वक नित्य सेवन करना चाहिए

एतैर्ब्रह्मचार्यादिभिराश्रमिभिश्चतुर्भिरपि द्विजातिभिर्वच्यमाणो दशविधस्वरूपो धर्मः प्रयत्नतः सततमनुष्ठेयः ॥ ९१ ॥

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥ ९२ ॥

धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच (पवित्रता) इन्द्रियनिग्रह, विद्या, सत्य, क्रोध का त्याग ये दस धर्म के लक्षण हैं।

सन्तोषो धृतिः, परेणापकारे कृते तस्य प्रत्यपकारानाचरणं क्षमा, विकारहेतुविषयसनिधानेऽप्यविक्रियत्वं मनसो दमः, "मनसो दमनं दमः" इति सनन्दनवचनात् । शीतातपादिइन्दसहिष्णुता दम इति गोविन्दराजः । अन्यायेन परधनादिग्रहणं स्तेयं तद्विनमस्तेयं, यथा शास्त्रं मृजलाभ्यां देहशोधनं शौचं, विषयेभ्यश्चचुरादिवारणमिन्द्रियनिग्रहः, शास्त्रादितत्वज्ञानं धीः, आत्मज्ञानं विद्या यथार्थाभिधानं सत्यम्, क्रोधहेतौ सत्यपि क्रोधानुत्पत्तिरक्रोधः, एतदशविधं धर्मस्वरूपम् ।

दश लक्षणानि धर्मस्य ये विप्राः समधीयते ।

अधीत्य चानुवर्तन्ते ते यान्ति परमां गतिम् ॥ ९३ ॥

जो ब्राह्मण (द्विजमात्र) इन दश लक्षणवाले धर्मोंको अध्ययन करते हैं और अध्ययन करके उसका आचरण करते हैं, वे परमगति (मोक्ष) को जाते हैं।

ये विप्रा एतानि दशविधधर्मस्वरूपाणि पठन्ति, पठित्वा चात्मज्ञानसाचिग्येनानुतिठन्ते, ब्रह्मज्ञानसमुत्कर्षात्परमां गतिं मोक्षलक्षणां प्राप्नुवन्ति ॥ ९३ ॥

दशलक्षणकं धर्ममनुतिष्ठन्समाहितः ।

वेदान्तं विधिवच्छ्रुत्वा संन्यसेदनृणो द्विजः ॥ ९४ ॥

उक्त दस लक्षणवाले धर्म (६।९२) को पालन करता हुआ द्विज सावधान चित्त होकर वेदान्त (उपनिषद् आदि) को विधिवत् (गुरु मुखसे) सुनकर ऋणत्रय (६।३६:३७) से छुटकारा पाकर संन्यास ग्रहण करें।

उक्तं दशलक्षणकं धर्मं संयतमनाः सन्ननुतिष्ठन् उपनिषदाद्यर्थं गृहस्थावस्थायां यथोक्ता-नध्ययनवर्मान्गुरुमुखादवगत्य परिशोधितदेवाश्रृणत्रयः संन्यासमनुतिष्ठेत् ॥ ९४ ॥

संन्यस्य सर्वकर्माणि कर्मदोषानपानुदन् ।
नियतो वेदमभ्यस्य पुत्रैश्वर्ये सुखं वसेत् ॥ ९५ ॥
[संन्यसेत्सर्वकर्माणि वेदमेकं न संन्यसेत् ।
वेदसंन्यासतः शूद्रस्तस्माद्वेदं न संन्यसेत् ॥ ६॥]

सब कर्म (गृहस्थके) करने योग्य अग्निहोत्र आदि का त्याग कर कर्मजन्य दोष (अज्ञातावस्था में की हुई जीवहिंसा आदि) को प्राणायाम से नष्ट करता हुआ जितेन्द्रिय होकर ग्रन्थ तथा अर्थसे वेदोंका अभ्यास कर पुत्रके ऐश्वर्यमें रहे। (पुत्रके द्वारा प्राप्त भोजन वस्त्र का उपभोग करता हुआ रहे) यह 'कुटीचर' संन्यासीका लक्षण है।

[सब (गृहस्थ के अनुष्ठेय यज्ञ, अग्निहोत्रादि) का त्याग करे, किन्तु एक वेदका त्याग न करे । वेदके त्यागसे (द्विज) शूद्र हो जाता है, इस कारण वेदका त्याग नहीं करना चाहिए।

सर्वाणि गृहस्थानुष्ठेयाग्निहोत्रादिकर्माणि परित्यज्य अज्ञातजन्तुवधादिकर्मजनितपापानि च प्राणायामादिना नाशयन्नियतेन्द्रिय उपनिषदो ग्रन्थतोऽर्थतश्चाभ्यस्य पुत्रश्वर्य इति पुत्रगृहे पुत्रोपकल्पितभोजनाच्छादनत्वेन वृत्तिचिन्तारहितः सुखं वसेत् । अयमेनासा- धारणो धर्मः कुटीचरस्योक्तः । इदमेव वक्तुं "वेदसंन्यासिकानां तु" (म. स्मृ. ६-८६) इति पूर्वमुक्तम् ॥ ९५ ॥

एवं संन्यस्य कर्माणि स्वकार्यपरमोऽस्पृहः ।
संन्यासेनापहत्यैनः प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ ९६ ॥

इस प्रकार सब कर्मों (गृहस्थ के याग अग्निहोत्रादि का त्याग कर अपने (ब्रह्मसाक्षात्कार रूप) कार्यको प्रधान मानता हुआ (स्वर्ग आदि में भी) निस्पृह होकर संन्यासके द्वारा पापोंको नष्ट कर (द्विज) परमगति (मोक्ष) को पाता है।

एवमुक्तप्रकारेण वर्तमानोऽग्निहोत्रादिगृहस्थ कर्माणि परित्यज्यात्मसाक्षात्कारस्वरूप-

स्वकार्यप्रधानः स्वर्गादावपि बन्धहेतुतया निःस्पृहः प्रव्रज्यया पापानि विनाश्य ब्रह्मसाक्षात्कारेण परमां गतिं मोक्षलक्षणां प्राप्नोति ॥ ९६ ॥

एष वोऽभिहितो धर्मो ब्राह्मणस्य चतुर्विधः ।

पुण्योऽक्षयफलः प्रेत्य राज्ञां धर्मं निबोधत ॥ ९७ ॥

(भृगु मुनि महर्षियोंसे कहते हैं कि आप लोगोंसे यह ब्राह्मण के चार प्रकार (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास) का धर्म पुण्य तथा अक्षय फल देनेवाला कहा।

ऋषीन्सम्बोध्योच्यते-एष युष्माकं ब्राह्मणश्य सम्बन्धी क्रियाकलापो धर्मस्तस्मै ब्रह्मचारिगृहस्थवानप्रस्थादिभेदेन चतुर्विधः परत्राक्षयफल उक्तः । इदानीं राजसम्बन्धिनं धर्मं शृणुत । अत्र च श्लोके ब्राह्मणस्य चातुराश्रम्योपदेशाद् ब्राह्मणः प्रव्रजेदिनि पूर्वमभिधानाद् ब्राह्मणस्यैव प्रव्रज्याधिकारः।

इकाईः 7, कुशकण्डिका

कुश कण्डिका का प्रयोग होम के लिए प्रयोग होता है। श्रौत स्मार्त यज्ञ सम्पादन के लिए भूमिशोधन हेतु कुश कण्डिका प्रयोग किया जाता है। जिसका क्रम निम्नलिखित है।

अथातोगृह्यस्थालीपाकानां कर्म्म। स्थण्डिले कुण्डे वा वेद्यां शुद्धायां भूमौ त्रिभिर्दर्भैः परिसमूहनं गोमयोदकेनोपलेपनं खादिरेण खड्गाकृतिना स्पयेन तदभावे स्रुवेण उदक्संस्था प्रागग्रास्तिस्त्रो रेखाः कृत्वा अनामिकाङ्गुष्ठाभ्यां यथोल्लेखिताभ्यो रेखाभ्यः पांसूनुद्धृत्य ईशानकोणे निक्षिपेत् मणिकोदकेन कमण्डलूदकेन वाऽभ्युक्ष्य अग्नि-मुपसमाधाय इति पञ्च भूसँस्कारान्कृत्वा ताम्रपात्रस्थमग्नि वेद्यां स्वाभिमुखं स्थापयेत् **ॐ अग्नि दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुपब्रुवे देवाँ २॥ आसादयादिह** ॥ इग्नि संस्थाप्य आचार्यब्रह्मणोर्वरणं कुर्य्यात् - अद्येहामुकोह अमुककर्मनिमित्तकहोमकर्मणि पूजन-पूर्वकं वरणं करिष्ये । भूमिदेवाग्रेत्यर्घं दत्वा गन्धद्वारेति गन्धविलेपनं कृत्वाक्षतपुष्पैः सम्पूज्य वरणसामग्री गृहीत्वा - एभिर्गंधाक्षतपुष्पपूगी- फलद्रव्ययज्ञोपवीतपुष्पमालावासोलङ्करणादिभिः करिष्यमाणामुकहोम- कर्मणि आचार्य्यकर्म कर्त्तु आचार्य्यत्वेन त्वामहं वृणे, वृतोस्मीति- प्रत्युक्तिः । तथाऽमुकहोमकर्माण कृताकृतावेक्षणाय ब्रह्मककर्मकर्त्तु ब्रह्मत्वेन त्वामहं वृणे । वृतोस्मि । आचार्य्य प्रार्थयेत् - आचार्य्यस्तु यथा स्वर्गे शक्रादीनां बृहस्पतिः । तथा त्वं मम यज्ञेऽस्मिन्नाचार्यो भव सुव्रत ॥ ब्रह्माणं प्रार्थयेत्-यथा चतुर्मुखो ब्रह्मा सर्ववेदधरो विभुः । तथा त्वं मम यज्ञेस्मिन्ब्रह्मा भव द्विजोत्तम !! अस्य यज्ञस्य निष्पत्यै भवन्तोभ्यथिता मया । सुप्रसन्नेन कर्तव्यं शान्तिकं विधिपूर्वकम् ॥ अस्मिन् होमकर्मणि त्वं मे आचार्यो भव अहं भवानीति प्रत्युक्तिः । त्वं मे ब्रह्मा भव अहं भवनीति प्र० । इतिवरणं विधाय अग्नेः दक्षिणतो ब्रह्मासनम् तत्र ब्रह्मोपवेशनम् आत्मासनं यजमानासनम् अग्नेरुत्तरतः आसनद्वयं कल्पयित्वा प्रणीतापात्रं सव्यहस्ते कृत्वा जलेनापूर्य दर्भैराच्छाद्य ब्रह्ममुखमवलोक्य प्रथमासने निधाय आलभ्य द्वितीयासने निदध्यात् दिशंदिशं प्रागग्रैरुदगग्रेश्च कुशैः परिस्तरणम् पुरस्तात् दक्षिणत पश्चात् उत्तरतः ३ । अर्थवन्ति वस्तून्यासादयेत् पवित्रच्छेदनानि त्रोणि कुशतरुणानि द्वे पवित्रे साग्रे अनन्तर्गर्भे प्रोक्षणीपात्रम् आज्यस्थाली चरुश्चेत् चरुस्थाली सम्मार्जनकुशाः पञ्च उपयमनकुशास्त्रिप्रभृतयः त्रयोदशपर्य्यन्ता ग्राह्याः समिधस्तिस्त्रः पालाश्यः प्रादेशमात्र्यः स्रुवः खादिरः गव्यमाज्यं व्रीहितण्डुलाः पूर्णपात्रं बहुभोक्तृपुरुषाहा रपरिमित कर्मोपयोगिनी दक्षिणा वरो वा एतानि वस्तूनि उत्तरवृद्ध्या स्थापयेत् त्रिभिर्दर्भैर्द्वच्छेद्ये प्रादेशमात्रे पवित्रे कृत्वा पात्रान्तरेण हस्तेन वा प्रणीतोद- केन पवित्राभ्यामाज्यस्थालीं सम्प्रोक्ष्य तथा चरुस्थालीं

सम्मार्जनकुशान् समिधः स्रुवम् आज्यम् पूर्णपात्रं दक्षिणाञ्च सम्प्रोक्ष्य अग्निप्रणीतयोर्मध्ये असञ्चरे प्रोक्षणी स्थापयेत् निरूप्याज्यमधिश्रयेत् चरुश्चेदाज्यचर्वोर्युग- पदारोपणम् आज्यं ब्रह्माधिश्रयति चरुमाचार्य्यः अर्द्धश्रिते चरावाज्ये वा ज्वलदुल्मुकं समन्ताद्भ्रामयेत् स्रुवमधोमुखं प्राञ्चं प्रतप्य सव्ये कृत्वा सम्मार्जनकुशैः अग्रतो मूलपर्य्यन्तं मूलतोऽग्रपर्य्यन्तं सम्मार्ज्य पुनः प्रतप्य कराभ्यां सम्मार्ज्य दक्षिणतः कुशोपरि निदध्यात् आज्यमुद्वास्य उत्तरतः स्थापयित्वा पश्चादानीय पूर्वपवित्राभ्यामुत्पूय अवेक्ष्य अपद्रव्य- निरसनं कृत्वा उपयमनकुशानादाय वामकरे कृत्वा तिष्ठन् घृताक्ताः समिधः पर्युक्ष्य स्वाहेति जुहुयात् ॐ समिधाग्नि दुवस्यत घृतैबों- धयतातिथिम् आस्मिन्हव्या जुहोतन १ सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्र जुहोतन अग्नये जातवेदसे २ तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन व्बर्द्धयामसि बृहच्छोचा यविष्ठय ३ ॐ उप त्वाग्ने हविष्मतीघृ- ताचीर्य्यन्तु हर्य्यत जुषष्व समिधो मम ४ स्वाहा ।

कुशकण्डिका के पूर्व कुछ ध्यातव्य तथ्य

जन्म से मृत्युपर्यन्त सोलह संस्कार या कोई शुभ धर्म कृत्य यज्ञ अग्निहोत्र के बिना अधूरा माना जाता है। वैज्ञानिक तथ्यानुसार जहाँ हवन होता है, उस स्थान के आस-पास रोग उत्पन्न करने वाले कीटाणु शीघ्र नष्ट हो जाते है।

शास्त्रों में अग्नि देव को जगत के कल्याण का माध्यम माना गया है जो कि हमारे द्वारा दी गयी होम आहुतियों को देवी देवताओं तक पहुंचाते है। जिससे देवगण तृप्त होकर कर्ता की कार्यसिद्धि करते है। कहा भी गया है कि देवताओं के दूत अग्नि हैं।

"अग्नि दूतं वृणीमहे" कोई भी मन्त्र जप की पूर्णता, प्रत्येक संस्कार, पूजन अनुष्ठान आदि समस्त दैवीय कर्म, हवन के बिना अधूरा रहता है।

हवन दो प्रकार के होते हैं वैदिक तथा तांत्रिक. आप हवन वैदिक करायें या तांत्रिक दोनों प्रकार के हवनों को कराने के लिए हवन कुंड की वेदी और भूमि का निर्माण करना अनिवार्य होता हैं. शास्त्रों के अनुसार वेदी और कुंड हवन के द्वारा निमंत्रित देवी देवताओं की तथा कुंड की सज्जा की रक्षा करते हैं. इसलिए इसे "मंडल" भी कहा जाता हैं.

हवन की भूमि हवन करने के लिए उत्तम भूमि को चुनना बहुत ही आवश्यक होता हैं. हवन के लिए सबसे उत्तम भूमि नदियों के किनारे की, मन्दिर की, संगम की, किसी उद्यान की या पर्वत के गुरु ग्रह और ईशान में बने हवन कुंड की मानी जाती हैं. हवन कुंड के लिए फटी हुई भूमि, केश युक्त भूमि तथा सांप की बाम्बी वाली भूमि को अशुभ माना जाता हैं.

हवन कुंड की बनावट. हवन कुंड में तीन सीढीयाँ होती हैं, जिन्हें" मेखला " कहा जाता हैं. हवन कुंड की इन सीढियों का रंग अलग- अलग होता हैं.

1. हवन कुंड की सबसे पहली सीधी का रंग सफेद होता हैं.
2. दूसरी सीढी का रंग लाल होता हैं.
3. अंतिम सीढी का रंग काला होता हैं.

ऐसा माना जाता हैं कि हवन कुंड की इन तीनों सीढीयों में तीन देवता निवास करते हैं.

1. हवन कुंड की पहली सीढी में विष्णु भगवान का वास होता हैं.
2. दूसरी सीढी में ब्रह्मा जी का वास होता हैं.

3. तीसरी तथा अंतिम सीढी में शिव का वास होता हैं.

हवन कुंड के बाहर गिरी सामग्री को हवन कुंड में न डालें आमतौर पर जब हवन किया जाता हैं तो हवन में हवन सामग्री या आहुति डालते समय कुछ सामग्री नीचे गिर जाती हैं. जिसे कुछ लोग हवन पूरा होने के बाद उठाकर हवन कुंड में डाल देते हैं. ऐसा करना वर्जित माना गया हैं. हवन कुंड की ऊपर की सीढी पर अगर हवन सामग्री गिर गई हैं तो उसे आप हवन कुंड में दुबारा डाल सकते हैं. इसके अलावा दोनों सीढीयों पर गिरी हुई हवन सामग्री वरुण देवता का भाग होती हैं. इसलिए इस सामग्री को उन्हें ही अर्पित कर देना चाहिए।

तांत्रिक हवन कुंड. वैदिक हवन कुंड के अलावा तांत्रिक हवन कुंड में भी कुछ यंत्रों का प्रयोग किया जाता हैं. तांत्रिक हवन करने के लिए आमतौर पर त्रिकोण कुंड का प्रयोग किया जाता हैं.

हवन कुंड और हवन के नियम

हवन कुंड के प्रकार - हवन कुंड कई प्रकार के होते हैं. जैसे कुछ हवन कुंड वृताकार के होते हैं तो कुछ वर्गाकार अर्थात चौरस होते हैं. कुछ हवन कुंडों का आकार त्रिकोण तथा अष्टकोण भी होता हैं.

आहुति के अनुसार हवन कुंड बनवायें

1. अगर आपको हवन में 50 या 100 आहुति देनी हैं तो कनिष्ठा उंगली से कोहनी (1 फुट से 3 इंच) तक के माप का हवन कुंड तैयार करें.

2. यदि आपको 1000 आहुति का हवन करना हैं तो इसके लिए एक हाथ लम्बा (1) फुट 6 इंच) हवन कुंड तैयार करें.

3. एक लक्ष आहुति का हवन करने के लिए चार हाथ (6 फुट) का हवनकुंड बनाएं.

4. दस लक्ष आहुति के लिए छः हाथ लम्बा (9 फुट) हवन कुंड तैयार करें.

5. कोटि आहुति का हवन करने के लिए 8 हाथ का (12 फुट) या 16 हाथ का हवन कुंड तैयार करें.

6. यदि आप हवन कुंड बनवाने में असमर्थ हैं तो आप सामान्य हवन करने के लिए चार अंगुल ऊँचा, एक अंगुल ऊँचा, या एक हाथ लम्बा चौड़ा स्थण्डिल पीली मिटटी या रेती का प्रयोग कर बनवा सकते हैं.

7. इसके अलावा आप हवन कुंड को बनाने के लिए बाजार में मिलने वाले ताम्बे के या पीतल के बने बनाए हवन कुंड का भी प्रयोग कर सकते हैं. शास्त्र के अनुसार इन हवन कुंडों का प्रयोग आप हवन करने

के लिए कर सकते हैं. पीतल या ताम्बे के ये हवन कुंड ऊपर से चौड़े मुख के और नीचे से छोटे मुख के होते हैं. इनका प्रयोग अनेक विद्वान् हवन बलिवैश्व देव आदि के लिए करते हैं.

8. भविष्यपुराण में 50 आहुति का हवन करने के लिए मुष्टिमात्र का निर्देश दिया गया हैं ।

बताये गए इस विषय के बारे में शारदातिलक तथा स्कन्दपुराण जैसे ग्रन्थों में कुछ मतभेद मिलता हैं।

हवन के नियम. वैदिक या तांत्रिक दोनों प्रकार के मानव कल्याण से सम्बन्धित यज्ञों को करने के लिए हवन में "मृगी" मुद्रा का इस्तेमाल करना चाहिए.

1. हवन कुंड में सामग्री डालने के लिए हमेशा शास्त्रों की आज्ञा, गुरु की आज्ञा तथा आचार्यों की आज्ञा का पालन करना चाहिए.

2. हवन करते समय आपके मन में यह विश्वास होना चाहिए कि आपके करने से कुछ भी नहीं होगा. जो होगा वह गुरु के करने से होगा.

3. कुंड को बनाने के लिए, कंठ, मेखला तथा नाभि को आहुति एवं कुंड के आकार के अनुसार निश्चित किया जाना चाहिए.

4. अगर इस कार्य में कुछ ज्यादा या कम हो जाते हैं तो इससे रोग शोक आदि विघ्न भी आ सकते हैं.

5. इसलिए हवन को तैयार करवाते समय केवल सुन्दरता का ही ध्यान न रखें बल्कि कुंड बनाने वाले से कुंड शास्त्रों के अनुसार तैयार करवाना चाहिए।

हवन करने से लाभ

1. हवन करने से हमारे शरीर के सभी रोग नष्ट हो जाते हैं.

2. हवन करने से आस पास का वातावरण शुद्ध हो जाता हैं.

3. हवन ताप नाशक भी होता हैं.

4. हवन करने से आस-पास के वातावरण में ऑक्सिजन की मात्रा बढ़ जाती हैं.

हवन से सम्बंधित कुछ आवश्यक बातें

अग्निवास का विचार

तिथि वार के अनुसार अग्नि का वास पृथ्वी, आकाश व पाताल लोक में होता है। पृथ्वी का अग्नि वास समस्त सुख का प्रदाता है लेकिन आकाश का अग्नि वास शारीरिक कष्ट तथा पाताल का धन हानि कराता

है। इसलिये नित्य हवन, संस्कार व अनुष्ठान को छोड़कर अन्य पूजन कार्य में हवन के लिये अग्निवास अवश्य देख लेना चाहिए।

हवन हेतु अग्निवास ज्ञान

शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से वर्तमान तिथि तक की संख्या में एक जोड़ कर वार संख्या भी जोड़ें तथा चार से भाग दें प्राप्त शेष के द्वारा निम्नलिखित फल जानना चाहिए –

शेष संख्या	अग्निवास स्थान	प्राणनाश
1	स्वर्ग	प्राणनाश
2	पाताल	धननाश
3	पृथिवी	सुख

विशेष – वार की गणना रविवार से होगी ।

हवन कार्य में विशेष सावधानियां

मुँह से फूंक मारकर, कपड़े या अन्य किसी वस्तु से धोक देकर हवन कुण्ड में अग्नि प्रज्वलित करना तथा जलती हुई हवन की अग्नि को हिलाना डुलाना या छेड़ना नही चाहिए। हवन कुण्ड में प्रज्वलित हो रही अग्नि शिखा वाला भाग ही अग्नि देव का मुख कहलाता है। इस भाग पर ही आहुति करने से सर्वकार्य की सिद्धि होती है। अन्यथा कम जलने वाला भाग नेत्र यहाँ आहुति डालने पर अंधापन, धुँआ वाला भाग नासिका यहां आहुति डालने से मानसिक कष्ट, अंगारा वाला भाग मस्तक यहां आहुति डालने पर धन नाश तथा काष्ठ वाला भाग अग्नि देव का कर्ण कहलाता है यहां आहुति करने से शरीर में कई प्रकार की व्याधि हो जाती है। हवन अग्नि को पानी डालकर बुझाना नही चाहिए। विशेष कामना पूर्ति के लिये अलग अलग होम सामग्रियों का प्रयोग भी किया जाता है।

सामान्य हवन सामग्री ये है

तिल, जौं, चावल, सफेद चन्दन का चूरा, अगर, तगर, गुग्गुल, जायफल, दालचीनी, लौंग, बड़ी इलायची, गोला, छुहारे, सर्वौषधि, नागर मौथा, इन्द्र जौ, आँवला, गिलोय, जायफल, ब्राह्मी तुलसी किशमिश, बालछड़, घी आदि .....

हवन समिधाएँ

कुछ अन्य समिधाओं का भी वाशिष्ठी हवन पद्धति में वर्णन है। उसमें ग्रहों तथा देवताओं के हिसाब से भी कुछ समिधाएँ बताई गई हैं। तथा विभिन्न वृक्षों की समिधाओं के फल भी अलग-अलग कहे गये हैं।

यथा-नोः पालाशीनस्तथा।

खादिरी भूमिपुत्रस्य त्वपामार्गी बुधस्य च ॥

गुरौरश्वत्थजा प्रोक्त शक्रस्यौदुम्बरी मता ।

शमीनां तु शनेः प्रोक्त राहर्ब्दूर्वामयी तथा ॥

केतोर्दर्भमयी प्रोक्ताऽन्येषां पालाशवृक्षजा ॥

आर्की नाशयते व्याधिं पालाशी सर्वकामदा।

खादिरी त्वर्थलाभायापामार्गी चेष्टादर्शिनी।

प्रजालाभाय चाश्वत्थी स्वर्गायौदुम्बरी भवेत्।

शमी शमयते पापं दूर्वा दीर्घायुरेव च ।

कुशाः सर्वार्थकामानां परमं रक्षणं विदुः ।

यथा बाण प्रहाराणां कवचं वारकं भवेत ।

तद्वदैवोपघातानां शान्तिर्भवति वारिका ॥

यथा समुत्थितं यन्त्रं यन्त्रेण प्रतिहन्यते ।

तथा समुत्थितं घोरं शीघ्रं शान्त्या प्रशाम्यति ॥

अब समित (समिधा) का विचार कहते हैं, सूर्य की समिधा मदार की, चन्द्रमा की पलाश की, मङ्गल की खैर की, बुध की चिड़चिडा की, बृहस्पति की पीपल की, शुक्र की गूलर की, शनि की शमी की, राहु दूर्वा की, और केतु की कुशा की समिधा कही गई है। इनके अतिरिक्त देवताओं के लिए पलाश वृक्ष की समिधा जाननी चाहिए। मदार की समिक्षा रोग को नाश करती है, पलाश की सब कार्य सिद्ध करने वाली, पीपल की प्रजा (सन्तति) काम कराने वाली, गूलर की स्वर्ग देने वाली, शमी की पाप नाश करने वाली, दूर्वा की दीर्घायु देने वाली और कुशा की समिधा सभी मनोरथ को सिद्ध करने वाली होती है। जिस प्रकार बाण के प्रहारों को रोकने वाला कवच होता है, उसी प्रकार दैवोपघातों को रोकने वाली शान्ति होती है। जिस प्रकार उठे हुए अस्त्र को अस्त्र से काटा जाता है, उसी प्रकार (नवग्रह) शान्ति से घोर संकट शान्त

हो जाते हैं। ऋतुओं के अनुसार समिधा के लिए इन वृक्षों की लकड़ी विशेष उपयोगी सिद्ध होती है।

वसन्त-शमी

ग्रीष्म-पीपल

वर्षा-ढाक, बिल्व शरद-पाकर या आम हेमन्त खैर शिशिर-गूलर, बड़ यह लकड़ियाँ सड़ी घुनी, गन्दे स्थानों पर पड़ी हुई, कीड़े मकोड़ों से भरी हुई न हों, इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए। विभिन्न हवन सामग्रियाँ और समिधाएं विभिन्न प्रकार के लाभ देती हैं। विभिन्न रोगों से लड़ने की क्षमता देती हैं।

प्राचीन काल में रोगी को स्वस्थ करने हेतु भी विभिन्न हवन होते थे। जिसे वैद्य या चिकित्सक रोगी और रोग की प्रकृति के अनुसार करते थे पर कालांतर में ये यज्ञ या हवन मात्र धर्म से जुड़ कर ही रह गए और इनके अन्य उद्देश्य लोगों द्वारा भुला दिए गये।

शिर दर्द होने पर किस प्रकार हवन से इलाज होता था इस श्लोक से देखिये :- श्वेता ज्योतिष्मती चैव हरितलं मनःशिला।। गन्धाश्वा गुरुपत्राद्या धूमं मूर्धविरेचनम्।। (चरक सूत्र 5/26-27)

अर्थात् अपराजिता, मालकांगनी, हरताल, मैनसिल, अगर तथा तेजपात्र औषधियों को हवन करने से शिरो विरेचन होता है।

परन्तु अब ये चिकित्सा पद्धति विलुप्त प्राय हो गयी है।

रोग और उनके नाश के लिए प्रयुक्त होने वाली हवन सामग्री

१.. सर के रोग, सर दर्द, अवसाद, उत्तेजना, उन्माद मिर्गी आदि के लिए

ब्राह्मी, शंखपुष्पी, जटामांसी, अगर, शहद, कपूर, पीली सरसो स्त्री रोगों, वात पित्त, लम्बे समय से आ रहे बुखार हेतु बेल, श्योनक, अदरख, जायफल, कटेरी, गिलोय इलायची, शर्करा, घी, शहद, सेमल, शीशम

३.. पुरुषों को पुष्ट बलिष्ठ करने और पुरुष रोगों हेतु सफेद चन्दन का चूरा, अश्वगंधा, पलाश, कपूर, मखाने, गुग्गुल, जायफल, दालचीनी, लौंग, बड़ी इलायची, गोला

४.. पेट एवं लिवर रोग हेतु भृंगराज, आमला, बेल, हरड़, अपामार्ग, गूलर, दूर्वा, गुग्गुल घी, इलायची

५. श्वास रोगों हेतु वन तुलसी, गिलोय, हरड, खैर अपामार्ग, काली मिर्च, अगर तगर, कपूर, दालचीनी, शहद, घी, अश्वगंधा, आक, यूकेलिप्टिस। हवन में आहुति डालने के बाद क्या करें?

7.1 पञ्चभूसंस्कारपूर्वक अग्निस्थापन

ॐ अग्निं दूतं पुरोदधे हव्यवाहमुपब्रुवे। देवाँ आसादयादिह॥

वेदों में अग्नी को **हव्यवाहन्** कहा गया हैं जो देवताओं के लिये हविर्वहन करता हैं । जिस देवता के उद्देश्य से हम अग्नि में आहुती प्रदान करते हैं उसे तत्तत् देवता के समीप अग्नि के द्वारा पहुंचाया जाता हैं ।अग्नि अत्यन्त शुचिव्रत होता हैं इसलिये अत्यन्त शुचिता का पालन कर के शुद्ध स्थान में अग्नि की स्थापना करनी चाहिये। पञ्चभूसंस्कार उस क्षेत्र का संस्कार है जहां हमे अग्नि को स्थापित करना हैं।

पञ्चभूसंस्कार सामग्री – कुशा, गोमय, यज्ञपात्र, जलपात्र, गोमयखण्ड(कण्डे), अन्य पूजन सामग्री॥

विधि – अग्नि स्थापना के पूर्व करिष्यमाण यज्ञ में आहुति सङ्ख्या को देखते हुवे कुण्ड/स्थण्डिल का निर्माण करें। कुण्ड/स्थण्डिल निर्माण के पश्चात् अभीष्ट सामग्री साथ लेकर पूर्वाभिमुख बैठकर आचमन, प्राणायाम पूर्वक सङ्कल्प करें-

अद्यपूर्वोच्चारित ..... अस्मिन् कर्मणि पञ्चभूसंस्कारपूर्वक अग्निस्थापनं करिष्ये॥

कुशैः त्रिप्रदक्षिणं परिसमुह्य परिसमुह्य परिसमुह्य।(कुशमुष्टि लेकर यज्ञकुण्ड/स्थण्डिल में जिस प्रकार झाडू करते है वैसे परिसमूहन् करें)

तान् कुशान् ईशान्यां परित्यज्य ।(उस कुशमुष्टि को ईशान्य दिक् में त्याग करें)

गोमयोदकेन त्रिरुपलिप्य उपलिप्य उपलिप्य ।(गोमय मिश्रित जल से कुण्ड/स्थण्डिल मे लेपन करें)

स्फेन स्रुवमूलेन वा प्राग्ग्रा तिस्रो रेखा उल्लिख्य उल्लिख्य उल्लिख्य।(स्फ्य (यज्ञपात्र विशेष) से कुण्ड/स्थण्डिल में पूर्वाग्र तीन रेखा उल्लेखित करें)

अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां रेखाभ्यः प्राक् पांसून् उधृत्य उधृत्य उधृत्य ।(की हुई रेखाओं मे से कुछ अंश दक्षिण हाथ के अङ्गुष्ठ व अनामिका से ले कर वामहस्त में रखकर कुण्ड के बाहर विसर्जित करें)

सुवासिन्याः कांस्यपात्रे आनीतमग्निं कुण्डस्यां आग्नेय्यां दिशि निधाय ।(कांस्यपात्र में सुवासिनियों द्वारा आनीत अग्नि कुण्ड/स्थण्डिल के अग्निकोण में स्थापित करें)

हुं फट् इति मन्त्रेण क्रव्यादांशं नैर्ऋत्यां दिशि क्षिपेत् ।(हुं फट् मन्त्र से आनीत अग्नि से एक छोटासा अंश लेकर नैर्ऋत्य दिशा में निक्षेप करें) **उदकोपस्पर्शः।**(जलस्पर्श करें)

अग्निपात्रमादाय कुण्डोपरि त्रिर्भ्रामयित्वा योनि मार्गेण नीत्वा आत्माभिमुखमग्निं प्रतिष्ठाप्य । (अग्निपात्र लेकर कुण्ड/स्थण्डिल पर तीन बार घुमाकर कुण्ड के योनिमार्ग से कुण्ड के अन्दर अपनी ओर आत्माभिमुख करके अग्निस्थापन करें)

ॐअग्निं दूतं पुरोदधे.....॥

अग्निमुखं कृत्वा ध्यायेत् – ॐ चत्वारि श्रृङ्गा .....॥

ॐ सप्तहस्त श्चतुश्रृङ्गः सपतहस्तो द्विशीर्षकः। त्रिपाद्प्रसन्न वदनः सुखासीन शुचिस्मितः॥ स्वाहां तु दक्षिणे पार्श्वे देवीं वामे स्वधा तथा। बिभ्रद्दक्षिण हस्तैऽस्तु शक्तिमन्नं स्रुवं स्रुचम्॥ तोमरं व्यजनं वामे घृतपात्रं च धारयन्। आत्मभिमुखमासीन एवं रूपो हुताशनः॥अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्। हिरण्यवर्ण ममलं समिद्धं विश्वतो मुखम्॥

भो अग्ने शाण्डिल्य गोत्र शाण्डिल्यासित देवलेति त्रिप्रवरान्वित भूमिर्माता वरुणः पिता मेषध्वज प्राङ्मुखो मम सम्मुखो भव॥

ॐ भूर्भुवः स्वः अमुक..... नाम्ने वैश्वानराय नमः सकलोपचारार्थे गन्धाक्षत पुष्पाणि समर्पयामि॥

कुण्ड/स्थण्डिल के आठो कोनों में अग्नि पूजन करें ।

ॐ अग्नये नमः । ॐ हुतवाहनाय नमः। ॐ हुताशने नमः। ॐ कृत्तवर्त्मने नमः। ॐ देवमुखाय नमः। ॐ सप्तजिह्वाय नमः। ॐ वैश्वानराय नमः। ॐ जातवेदसे नमः। मध्ये **श्री यज्ञपुरुषाय नमः॥** इत्यग्निं सम्पूज्य । पञ्चप्राणाहुतिः जुहुयात्।

ॐ प्राणाय स्वाहा।ॐ अपानाय स्वाहा। ॐ व्यानाय स्वाहा । ॐ उदानाय स्वाहा। ॐ समानाय स्वाहा

॥इति पञ्चभूसंस्कारपूर्वक अग्निस्थापन॥

कुशकण्डिका (स्थालीपाक) प्रयोगः॥[18]

पञ्चभूसंस्कार पूर्वक अग्निस्थापन करने के पश्चात् नवग्रहादि अन्य पीठस्थ देवता तथा मुख्य देवता स्थापन पूजन कर स्थापित देवताओं के हवन कर्म से पूर्व कुशकण्डिका(स्थालीपाक) नामक अग्निसंस्कार किया जाता हैं।जिसमें सर्वप्रथम जिन देवताओं के प्रीत्यर्थ हम आहुति जिन पदार्थों से प्रदान करेंगे उन-उन पदार्थों का उच्चारण तथा देवताओं का अभिध्यान किया जाता हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि हम यज्ञकर्म में किस देवता को आहुति प्रदान करेंगे॥ (देवताभिध्यानम् प्रत्येक कर्मों मे कर्माङ्गदेवताओं के अनुसार भिन्न - भिन्न होता हैं।)

[18] यह कुशकण्डिका प्रयोग पारस्करग्रह्यसूत्र (प्रथम काण्ड/प्रथम खण्ड/प्रथम काण्डिका) पर आधारित है।

कुशकण्डिका पूर्व तैयारी- कुशपवित्रक, यज्ञपात्र (प्रणिता,प्रोक्षणी,स्रुवा,स्रुक,स्फ्य) आज्यस्थाली,चरुस्थाली, पूर्णपात्र, कुशमुष्टि, समिधा, दो , तीन , पांच, सात इस प्रकार से कुशाओं को ले कर अग्रभाग ग्रन्थी करें ।

वैकल्पिकावधारणम्- तत्र पूर्वेण ब्रह्मणो गमनम्। उत्तरेण पात्रासादनम्। द्वे पवित्रे। आज्यस्थाली। चरुस्थाली। पालाशः समिधः। प्रांचावाघारौ। समिद्धतमे। आज्यभागौ। पूर्णपात्रम्। वरोदक्षिणा। एतान् वैकल्पिकपदार्थानहं करिष्ये॥

देवताभिध्यानम् – प्रजापतिं - इन्द्रं – अग्निं – सोमं – एताः आज्येन । अग्निं – सूर्यं – अग्नीवरुणौ – अग्नीवरुणौ – विश्वान्देवान् मरुतः स्वर्कान् – वरुणं – आदित्यं - प्रजापतिं – अग्निं शेषेण स्विष्टकृतम् एताः अङ्गप्रधान देवताः आज्येनाहं यक्ष्ये ॥ (देवताभिध्यान में कर्मानुसार देवताओं के हविर्द्रव्या भिन्न-भिन्न हो सकते हैं।)

कुशकण्डिका- अग्नेर्दक्षिणतो ब्रह्मासनमास्तीर्य। (अग्नी/कुण्ड के दक्षिण दिशा में ब्रह्मासन रखे)। **उदङ्मुखो यजमानः स्वस्य समीपे प्राङ्मुखं ब्रह्माणमुपवेश्य।** (यजमान् उत्तर की ओर मुख कर ब्रह्मा को पूर्वाभिमुख बिठाए)। **गन्धाधिभिरलङ्कृत्य ।** (ब्रह्मा को गन्धादि से पूजन करें)। **ब्रह्मा उत्तरेण गत्वा अग्नेर्दक्षिणतः स्वासने उपविशेत् ।स्वासनात् किञ्चित् दर्भं नैर्ऋत्यां क्षिपेत्।उदकोपस्पर्शः।** (ब्रह्मा उत्तरदिशा से जा कर अग्नि के दक्षिणदिशा में स्वयं के आसन पर बैठ॥ अपने आसन से कुछ दर्भ निकालकर नैर्ऋत्य में फेकें। जल स्पर्श करें)। **प्रणीतापात्रं वामहस्ते धृत्वा दक्षिणहस्तेन उदकेनापूर्य ।**(प्रणीतापात्र बाए हाथ में ले कर दहिने हाथ से जल भरें)।**यजमानः - भो ब्रह्मन् अपः प्रणेश्यामि। ब्रह्मा – ॐ प्रणय॥ प्रणीतापात्रं अग्नेरुत्तरतः कुशेषु निदध्यात् । प्रथमस्थाने निधाय। द्वितीयस्थाने निदधाति।** (प्रणीता पात्र अग्नि के उत्तर में कुश के रखे हुवें परिकल्पित दो स्थानों मे से प्रथमस्थान में रखकर पुनः द्वितीयस्थान पर रखें)। **पूर्वाग्रदर्भैः ईशानमारभ्य ईशान पर्यंतम् अग्नेः परिस्तरणम् कुर्यात् । पुरस्तात् उदगग्रैः। दक्षिणतः प्रागग्रैः। पश्चिमतः उदगग्रैः। उत्तरतः प्रागग्रैः। हस्तस्य इतरथावृत्तिः।** (दर्भ/कुशों को पूर्वाग्र कर के ईशान से ईशान पर्यन्त अग्नि को परिस्तरण करें ।पूर्व में उत्तराग्र। दक्षिण में पूर्वाग्र। पश्चिम में उत्तराग्र। उत्तर में पूर्वाग्र। इसप्रकार कुश रखकर हाथ को विपरीत दिशा में घुमावें)। **अग्नेरुत्तरतः पात्रासादनम् ।** (अग्नि के उत्तर में कुश/दर्भ आसादन पूर्वक पात्रासादन करें)। **पवित्रच्छेदनास्त्रयो दर्भः।** (पवित्र च्छेदनार्थ तीन दर्भ/कुश)। **पवित्रे द्वे।**(अग्र बांधे हुवे दो पवित्र)। **प्रोक्षणी पात्रम्।** (प्रोक्षणी पात्र)। **आज्यस्थाली** (आज्यस्थाली)। **चरुस्थाली ।** (चरुथाली)। **संमार्जन कुशाःपञ्च।** (संमार्जनार्थ अग्र बांधे हुवे पांच कुश) । **उपयमनकुशाः सप्त।** (अग्र बांधे हुवे उपयमन

नामक सात कुश)। **तिस्रःसमिधः** । (तीन समिधा)। **स्रुवः।स्रुक् । आज्यम् ।तंडुलाः।पूर्णपात्रम् ।** (स्रुवा,स्रुक,आज्य,तंडुल,पूर्णपात्र इत्यादि सामग्री आसादन करें)। **पवित्रे कृत्वा। द्वयोरुपरि त्रीणि निधाय। द्विमूलेन द्वौ कुशौ प्रदक्षिणी कृत्य । सर्वाण्युगपद्धृत्वा। अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां छित्वा तान्युत्तरतः क्षिपेत्।द्वेग्राह्यः।** (पवित्रकरण करे – पात्रासादन में स्थापित, अग्रभाग बन्धित दो एवं तीन कुशों को कर्ता अपने हाथ में ले कर प्रागग्र दो पवित्रों के उपर उत्तराग्र तीन पवित्र रखकर दो पवित्रों के मूल से दो पवित्रों के अग्र प्रादेश भाग को प्रदक्षिणवत् वेष्टन करे। दो पवित्र के मूल, तीन पवित्र के मूल एवं अग्रभाग को एकत्र कर अनामिका एवं अङ्गुष्ठ से दो पवित्र अग्रभाग का छेदन कर दो पवित्र के मूल एवं तीन पवित्र के मूल तथा अग्र को त्याग कर छेदन किये हुवे दो पवित्र के अग्र को ग्रहण करें) । **द्वे पवित्रे प्रोक्षणी पात्रे निधाय ।** (दो पवित्रों को प्रोक्षणी पात्र में रखें)। **पात्रान्तरेण प्रणीतोदकमासिच्य।** (अन्य किसि पात्र से प्रणीता पात्रस्थ जल ले कर प्रोक्षणीपात्र मे प्रोक्षण करें) **अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां उत्पूय।** (प्रोक्षणी पात्रस्थ पवित्र दोनो हाथों के अङ्गुष्ठ अनामिका के मध्यपर्व में पकडकर प्रोक्षणीपात्रस्थ जल शुद्ध करें) । **सव्ये पाणौ कृत्वा । दक्षिणहस्तमुत्तानं कृत्वा मध्यमानामिकाङ्गुल्योः मध्यपर्वाभ्यामपां उद्गिञ्चनम् – उद्गिञ्चनम् – उद्गिञ्चनम् ॥** (प्रोक्षणीपात्र को बाए हाथ मे लेकर दहिना हाथ उल्टा कर मध्यमा,अनामिका के मध्यपर्व से पात्रस्थ जल को तीन बार उपर की ओर छिडकें)। **ताभिस्तासां प्रोक्षणम् ।** (प्रोक्षणी पात्रस्थ पवित्र से प्रणीता पात्रस्थ जल से प्रोक्षणी का प्रोक्षण करें)। **पात्राणि प्रोक्षयेत् ।** (प्रोक्षणी जल से आसादित पात्रों का प्रोक्षण करें)। **आज्यस्थालिं प्रोक्षामि।चरुस्थालिं प्रोक्षामि। संमार्जन कुशान् प्रोक्षामि। उपयमन कुशान् प्रोक्षामि। समिधं प्रोक्षामि। स्रुवं प्रोक्षामि।आज्यं प्रोक्षामि। तंडुलान् प्रोक्षामि। पूर्णपात्रं प्रोक्षामि।अन्योपकल्प द्रव्यं प्रोक्षामि।** (आज्यस्थालि,चरुस्थालि इत्यादि आसादित संभारों का प्रोक्षण करें) । **असंचरे प्रोक्षणीपात्रं निधाय ।** (प्रणीता एवं अग्नि के मध्य असंचर स्थान में प्रोक्षणी का स्थापन करें)।

आज्यस्थाल्यां आज्यं निरूप्य॥ (आज्यस्थाली में आज्य रखें)। **चरुस्थाल्यां तण्डुलानोप्य।लौकिकोदकेन त्रिः प्रक्षाल्य। प्रणीतोदकमासिच्य।** (हवनार्थ चरु/हविष्य बनाने के लिये चरुपात्र मे जल से तीन बार चावल धो कर प्रणीतापात्र के जल से प्रोक्षण करें) । **आज्यं ब्रह्माधिश्रयति।** (आज्य/घी को ब्रह्मा अग्निकुण्ड मे गरम करने के लिये रखें) । **तदुत्तरतः चरुं कर्ताधिश्रयति।** (आज्य के उत्तर में चरु/हविष्य बनाने के लिये यजमान/कर्ता चरुपात्र अग्निकुण्ड मे रखें) । **ज्वलदुल्मुखेन पर्यग्निकरणं कुर्यात् ।इतरथावृत्तिः।** (एक कुश/दर्भ को कुण्डाग्नि से प्रज्वालित कर आज्य एवं चरु के उपर प्रदक्षिणवत् भ्रामण करें। पश्चात् हाथ को विपरीत घुमावें)। **अर्धश्रिते चरौ स्रुवं प्रतप्य । संमार्जन कुशैः संमार्ज्य। अग्रैः अग्रादारभ्य मूल पर्यन्तम् । मूलैः मूलादारभ्य अग्र पर्यन्तम् । विपर्यस्य बहिः मूलैः अभ्युक्ष्य । पुनः**

प्रतप्य । अग्नेः पश्चात् देशे निदध्यात्। (अर्धपक्व चरु पर स्रुव को प्रतपन् /गरम करे । संमार्जन कुशा से प्रणीतोदक से प्रोक्षण करे। वह संमार्जन कुशा के अग्र से स्रुवा के सामने अग्रभाग से मूल पर्यन्त तथा संमार्जन कुशा के मूल से स्रुवा के पृष्ठभाग में मूल से अग्र पर्यन्त प्रोक्षित करें । पुनः प्रतपन् करे। अग्नि के पश्चिम में अपने दहिने भाग में रखें । **संमार्जन कुशानग्नौ प्रक्षेपः।** (संमार्जन कुश की ग्रन्थी निकालकर कुशा अग्नि में विसर्जन करें) । **आज्यमुद्वास्य चरोः पूर्वेनानीय स्रुवोत्तरत आसादयेत्।** (कुण्डस्थित आज्य निकालकर आसादित चरु के पूर्वदिशा से ले कर अग्नि के पश्चिम में स्रुवा के उत्तर में रखें)। **चरुं आनीय आज्यस्य उत्तरत आसादयेत्।** (कुण्ड से चरुपात्र निकालकर आज्य के उत्तर मे रखें ।) **पवित्राभ्यां आज्यमुत्पूय ।अवेक्ष्य । अपद्रव्य निरसनं ।प्रोक्षणीश्च पूर्ववत्।** (प्रोक्षणीस्थ पवित्र से आज्यपात्र पवित्रित करें। आज्य देखे। आज्यपात्र में कुछ अपशिष्ट हो तो उसे निकाले। प्रोक्षणी मे पूर्ववत् उत्पवन्/पवित्रकरण करें।) **उपयमनकुशानादाय । तिष्ठन् समिधोऽभ्याधाय ।** (उपयमन कुश/ अग्रभाग बन्धित सात कुशों की मुष्टि बाए हाथ में ले अपने स्थान में खडे हो कर दहिने हाथ से तीन समिधा अग्नि में समर्पित करें)। **प्रोक्षणी जलेन सपवित्र हस्तेन ईशानमारभ्य ईशान पर्यन्तं अग्नेः पर्युक्षणं कुर्यात् ।इतरथावृत्तिः।** (दहने हाथ में पवित्र रखकर प्रोक्षणीजल से अग्नि के ईशान से आरम्भ कर ईशान पर्यन्त प्रदक्षिणवत् जलधारा करें। पश्चात् हाथ को विपरीत दिशा में घुमावें।) **पवित्रे प्रणीतासु निधाय।** (पवित्र को प्रणीतापात्र मे रखें) **प्रोक्षणीपात्रं वायवे संस्रव प्रक्षेपार्थं स्थापयेत् ।** (संस्रव प्रक्षेपार्थ प्रोक्षणीपात्र वायव्य कोण में रखें) । **अग्निं गन्धादिभिरलङ्कृत्य ।**(गन्धाक्षत पुष्प से अग्नि पूजन करें)। **हृदि सव्यहस्तं निधाय ।** (यजनकर्ता अपने बाएं हाथ को हृदय पर रखे)। **ब्रह्मणा कुशैरन्वारब्धः। वाग्यतः। स्रुवेन जुहुयात्।** (ब्रह्मा के द्वारा यजनकर्ता को कुश/दर्भ के द्वारा स्पर्श कराकर । मौन होकर । स्रुवा से यजन करें।) मन्त्रान्त स्वाहा शब्द में आहुति दे तथा शेष भाग प्रोक्षणीपात्र में त्याग करें । **अग्नेरुत्तरभागे मनसा - ॐ प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये न मम॥ अग्नेर्दक्षिणभागे – ॐ इन्द्राय स्वाहा । इदमिन्द्राय न मम॥ ॐ अग्नये स्वाहा। इदमग्नये न मम॥ ॐ सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय न मम॥**

द्रव्यत्याग सङ्कल्पः- (हस्ते जलमादाय) **मया संपादितानि हवनीय द्रव्यानि या या यक्ष्यमान् देवताः ताभ्यः ताभ्यः मया परित्यक्तानि न मम॥ यथा दैवतमस्तु॥**

वराहुतिः – ॐ गणानान्त्वा.....॥

7.3 कुशकण्डिका मूलपाठः

- अग्नेर्दक्षिणतो ब्रह्मासनमास्तीर्य। उदङ्मुखो यजमानः स्वस्यसमीपे प्राङ्मुखं ब्रह्माणमुपवेश्य। गन्धाधिभिरलङ्कृत्य । ब्रह्मा उत्तरेण गत्वा अग्नेर्दक्षिणतः स्वासने उपविशेत्

।स्वासनात् किञ्चित् दर्भं नैर्ऋत्यां क्षिपेत्।उदकोपस्पर्शः। प्रणीतापात्रं वामहस्ते धृत्वा दक्षिणहस्तेन उदकेनापूर्य । ।यजमानः - भो ब्रह्मन् अपः प्रणेश्यामि। ब्रह्मा – ॐ प्रणय॥ प्रणीतापात्रं अग्नेरुत्तरतः कुशेषु निदध्यात् । प्रथमस्थाने निधाय। द्वितीयस्थाने निदधाति। पूर्वाग्रदर्भैः ईशानमारभ्य ईशान पर्यंतम् अग्नेः परिस्तरणम् कुर्यात् । पुरस्तात् उदगग्रैः। दक्षिणतः प्रागग्रैः। पश्चिमतः उदगग्रैः। उत्तरतः प्रागग्रैः। हस्तस्य इतरथावृत्तिः। अग्नेरुत्तरतः पात्रासादनम् । पवित्रच्छेदनास्त्रयो दर्भः। प्रोक्षणी पात्रम्। आज्यस्थाली। चरुस्थाली। संमार्जन कुशाःपञ्च। उपयमनकुशाः सप्त। तिस्रःसमिधः । स्रुवः।स्रुक् । आज्यम्। तंडुलाः।पूर्णपात्रम्। पवित्रे कृत्वा। द्वयोरुपरि त्रीणि निधाय। द्विमूलेन द्वौ कुशौ प्रदक्षिणी कृत्य । सर्वाण्युगपद्भृत्वा। अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां छित्वा तान्युत्तरतः क्षिपेत्।द्वेग्राह्यः। द्वे पवित्रे प्रोक्षणी पात्रे निधाय। पात्रान्तरेण प्रणीतोदकमासिच्य। अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां उत्पूय। सव्ये पाणौ कृत्वा । दक्षिणहस्तमुत्तानं कृत्वा मध्यमानामिकाङ्गुल्योः मध्यपर्वाभ्यामपां उद्दिङ्गनम् – उद्दिङ्गनम् – उद्दिङ्गनम् ॥ ताभिस्तासां प्रोक्षणम् । पात्राणि प्रोक्षयेत् ।आज्यस्थालिं प्रोक्षामि।चरुस्थालिं प्रोक्षामि। संमार्जन कुशान् प्रोक्षामि। उपयमन कुशान् प्रोक्षामि। समिधं प्रोक्षामि। स्रुवं प्रोक्षामि।आज्यं प्रोक्षामि। तंडुलान् प्रोक्षामि। पूर्णपात्रं प्रोक्षामि।अन्योपकल्प द्रव्यं प्रोक्षामि। असंचरे प्रोक्षणीपात्रं निधाय । आज्यस्थाल्यां आज्यं निरूप्य॥ चरुस्थाल्यां तण्डुलानोप्य। लौकिकोदकेन त्रिः प्रक्षाल्य। प्रणीतोदकमासिच्य। आज्यं ब्रह्माधिश्रयति। तदुत्तरतः चरुं कर्ताधिश्रयति। ।ज्वलदुल्मुखेन पर्यग्निकरणं कुर्यात् ।इतरथावृत्तिः। अर्धश्रिते चरौ स्रुवं प्रतप्य । संमार्जन कुशैः संमार्ज्य। अग्रैः अग्रादारभ्य मूल पर्यन्तम् । मूलैः मूलादारभ्य अग्र पर्यन्तम् । विपर्यस्य बहिः मूलैः अभ्युक्ष्य । पुनः प्रतप्य । अग्नेः पश्चात् देशे निदध्यात्। संमार्जन कुशानग्नौ प्रक्षेपः। आज्यमुद्वास्य चरोः पूर्वेनानीय स्रुवोत्तरत आसादयेत्। चरुं आनीय आज्यस्य उत्तरत आसादयेत्। पवित्राभ्यां आज्यमुत्पूय ।अवेक्ष्य । अपद्रव्य निरसनं ।प्रोक्षणीश्च पूर्ववत्। उपयमनकुशानादाय । तिष्ठन् समिधोऽभ्याधाय । प्रोक्षणी जलेन सपवित्र हस्तेन ईशानमारभ्य ईशान पर्यन्तं अग्नेः पर्युक्षणं कुर्यात्। इतरथावृत्तिः। पवित्रे प्रणीतासु निधाय। प्रोक्षणीपात्रं वायवे संस्रव प्रक्षेपार्थं स्थापयेत् । अग्निं गन्धादिभिरलङ्कृत्य । हृदि सव्यहस्तं निधाय । ब्रह्मणा कुशैरन्वारब्धः। वाग्यतः। स्रुवेन जुहुयात्॥

॥इतिकुशकण्डिका प्रयोगः॥

जिस पात्र से अग्नि लाया गया हो उस पर अक्षत एवं जल छोड़ दें। तदनन्तर अग्नि प्रज्वलित करें। अग्नि का ध्यान-**ॐ चत्वारि श्रृंगा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य त्रिधा बद्धो बृषभो रोरवीति**

महोदेवो मर्त्या आविवेश।

ॐ भूर्भुवः स्वः अग्ने वैश्वानर शाण्डिल्यगोत्र शाण्डिलासितदेवलेति त्रिप्रवरान्वित भूमिमातः वरुणपिता मेषध्वज प्राङ्मुख मम सम्मुखो भव।

इससे (वरद नामक) अग्नि की प्रतिष्ठा कर **ॐ भूभुर्वः स्वः अग्नये नमः** इससे (बर्हि) अग्नि की पञ्चोपचार पूजा कर प्रार्थना करें **ॐ अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनं हिरण्यवर्णममलं समृद्धं विश्वतोमुखम्।**

पुनः पुष्पमाला चन्दन आदि लेकर ॐ अद्येत्यादि देशकालौ सङ्कीर्त्य कर्तव्यामुकहोमकर्मणि कृताकृतवेक्षणरूपब्रह्मकर्म कर्तुममुकगोत्रममुकशर्माणं वा पञ्चाशत्कुशनिर्मितं प्रदक्षिणग्रन्थिकं ब्रह्माणमेभिः पुष्प-चन्दन-ताम्बूलवासोभिब्रह्मत्वेन त्वामहं वृणे। ब्रह्मा कहे वृतोऽस्मि । आचार्य-यथाविहितं कर्म कुरु। ब्रह्मा-करवाणि।

तदनन्तर अग्नि की दाहिनी ओर परिस्तरण भूमि को छोड़कर ब्रह्मा के बैठने के लिए शुद्ध आसन देकर ॐ अस्मिन्नमुक-होमकर्मणि त्वं मे ब्रह्मा भव। ब्रह्मा बोले भवानि। यदि ब्रह्म लक्षणयुक्त ब्राह्मण न मिले तो पचास (50) कुशाओं द्वारा ब्रह्मा का निर्माण कर लें। ब्रह्मा अग्नि की प्रदक्षिणा करें।

आचार्य अग्नि की दक्षिण ओर कुशरूप आसन और उत्तर ओर प्रणीता पात्र स्थापन के लिए दो कुश रखे तथा प्रणीतापात्र को आगे कर उसको जल से पूर्ण कर और दो कुशाओं से उस पात्र को ढककर कुशरूप प्रथम आसन पर रख ब्रह्मा का मुख देख द्वितीय कुशरूप आसन पर उस प्रणीता पात्र को रखे।

परिस्तरण-

कुश कण्डिका में प्रत्येक दिशा के लिए चार-चार कुशों का परिस्तरण किया जाता है अतः इसके लिए कुल १६ कुशाएँ चाहिए। हाथ में 16 कुशा लेकर 4-4 कुश अग्निकोण से ईशान कोण तक, ब्रह्मा से लेकर वेदी तक, नैऋत्य कोण से वायव्य कोण तक एवं अग्नि से प्रणीता पर्यन्त सोलह कुशाओं का परिस्तरण किया जाता है। कुश स्थापना करने वाले व्यक्ति एक दिशा में चार कुश रखे। मन्त्रोच्चार के साथ कुशाओं को निर्धारित दिशा में हाथ जोड़कर उसी दिशा में कुश स्थापित करता जाय। कुश स्थापित करते समय

कुश का ऊपरी नुकीला भाग पूर्व या उत्तर की ओर रहे तथा मूल (जड़) भाग पश्चिम या दक्षिण की ओर रहना चाहिए। प्रत्येक मन्त्र के साथ दिशा विशेष के लिए यही क्रम अपनाया जाए।

दिशाओं के अनुसार कुश परिस्तरण का मंत्र-

पूर्व दिशा-

ॐ प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।

दक्षिण दिशा-

ॐ दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नमऽइषुभ्यो नमऽएभ्यो अस्तु।

पश्चिम दिशा-

ॐ प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू, रक्षितान्नमिषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो, रक्षितृभ्यो नमइषुभ्यो नमएभ्यो अस्तु।।

उत्तर दिशा-

ॐ उदीची दिक्सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताशनिरिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।।

तदनन्तर अग्नि के उत्तर भाग से पश्चिम में पवित्री के लिए तीन कुश, पुनः दो कुश रखे। प्रोक्षणी पात्र, आज्य स्थाली (कटोरा), संमार्जन कुश पांच, उपयमन कुश सात, समिधा तीन, श्रुवा, घृत, पूर्णपात्र, उसी ओर शमी तथा पलाश मिश्रित लाजा (धान का लावा) सिल, सूप, दृढ़पुरुष एवं आलेपन आदि सामग्री को रखे।

पवित्रीकरण-

अधोलिखित प्रक्रिया से पवित्री बनावे। दो कुश के ऊपर तीन कुश को रखकर दो कुशाओं से मूल कां घुमाकर, उन तीन कुशाओं को तोड़कर, दो कुशाओं को ग्रहण करता हुआ तीन कुशाओं का परित्याग करे। उन्हीं दो कुशाओं की पवित्री बनावे। पवित्री वाले हाथ से प्रणीता पात्र के जल को तीन बार प्रोक्षणी पात्र में डाले। अनामिका और अंगूठे से पवित्री को पकड़ कर तीन बार प्रोक्षिणी पात्र के जल का प्रादेश मात्रा (एक वित्ता) उछाले। तथा प्रणीता के जल से प्रोक्षणी का प्रोक्षण करे और उक्त प्रोक्षणी के जल से

वेदी के पास स्थापित सभी वस्तुओं का सिंचन करे अग्नि-प्रणीता के मध्य में प्रोक्षणीपात्र रख दे। तदनन्तर घी के

कटोरे में घी रखे। उसे अग्नि पर तपावे और जलती हुई तृण (लकड़ी) से उस घी के कटोरे की प्रदक्षिणा करे। पुनः एक बार विपरीत प्रदक्षिणा करे। पश्चात् उस वेदी की अग्नि में श्रुव का प्रतपन करे। तत्पश्चात् संमार्जन कुश के अग्र भाग से ध्रुवा के निचले भाग को पोछें और कुशा के अग्र भाग से श्रुवा के ऊपरी भाग का संमार्जन करे तथा प्रणीता पात्र के जल से छिड़के और संमार्जन कुश का अग्नि में प्रक्षेप करे। पुनः श्रुवा को तपाकर दाहिनी ओर रख दे तथा आज्यपात्र को अग्नि से उतार कर प्रणीता पात्र के पश्चिम भाग में रखता हुआ अनामिका एवं अँगूठे से पवित्री पकड़कर प्रोक्षणी की तरह उछाले और उस आज्य को देखकर उसमें यदि तिनका आदि पड़ गया हो तो उसको निकाल दे। पुनः प्रोक्षणी के समान उसको अग्नि के पश्चिम भाग में रखकर सात उपयमन कुशाओं को बायें हाथ में लेकर तथा तीन समिधाओं को दाहिने हाथ में ग्रहण कर प्रजापति का मन से ध्यान करता हुआ खड़ा हो उन तीन समिधाओं का मौन होकर अमन्त्रक अग्नि में प्रक्षेप करे।

ध्रुव पूजन-

ॐ आवाहयाम्यहं देवं श्रुवं शेवधिमुत्तमम्। स्वाहाकार स्वधाकार-वषट्कारसमन्वितम्। हाथ में अक्षत, पुष्प और जल लेकर संकल्प करें-संकल्प-देशकालौ संकीर्त्य अस्मिन् अमुक-देवता-मन्त्र-जपकृतपुरश्चरण-दशांश-हवनाख्ये कर्मणि इदं सम्पादितं समिच्चरुतिलाज्यादि-हविर्द्रव्यं विहितसंख्याहुतिपर्याप्तं या याः वक्ष्यमाणदेवतास्तस्यै तस्यै देवतायै न मम। यथासंख्यं यथादैवतमस्तु, यह बोलते हुए अक्षत, जल भूमि पर छोड़ दें।

तत्पश्चात् बैठकर पवित्री सहित हाथ से जल द्वारा ईशान कोण से आरम्भ कर पुनः ईशान कोण तक अग्नि के चारों ओर जल घुमाता हुआ एक बार उस जल का विपरीत घुमावे तथा दोनों पवित्रियों को प्रणीता पात्र में स्थापित कर अपना दाहिना घुटना मोड़ कुश द्वारा ब्रह्मा का स्पर्श करता हुआ प्रज्वलित अग्नि में श्रुवा से घृत की आहुति देवे। यजमान भी द्रव्य त्याग करे।

सहायक ग्रन्थसूची-

- पारस्करगृह्यसूत्र, डॉ. बह्मानन्द त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
- गोभिलगृह्यसूत्र, श्री चिन्तामणी भट्टाचार्य, मुनसीराम मनोहरलाल प. पीवीटी, टीटीडी. दिल्ली
- स्मार्तोल्लास
- नित्यकर्मपूजाप्रकाश, गीता प्रेस गोरखपुर
- श्रौतस्मार्त्तयज्ञविमर्श
- मुहूर्त्त मुहूर्त्त चिन्तामणिः, डॉ. रामचन्द्र पाण्डेय: कृष्णदास अकादमी, वाराणसी (1994 प्रकाशन)

राष्ट्रीय आदर्श वेद विद्यालयों
वेद पाठशालाएँ तथा गुरु-शिष्य परम्परा इकाइयाँ

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन (म.प्र.)

(शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार)

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड

Vedavidya Marg, Chintaman Ganesh, Post. Jawasia, Ujjain 456006 (M.P.)

दूरभाष/Phone : (0734) 2502255, 2502254

E-mail : msrvvpujn@gmail.com, Website - www.msrvvp.ac.in